प्रथम अध्याय

सितार की उत्पत्ति

कला वह ज्योति है जो आत्मा का परमात्मा के साथ सम्पर्क होने से उद्‌भूत होती है। मानव के प्रकृति मैलीन होने से ही कला की सृष्टि होती है। भावाभिभूत मानव ही इस कलात्मक नाद के ज़रिए अपने आपको अभिव्यक्त करता है। यह नाद उल्लास की अभिव्यक्ति हो सकता है तथा गहरा दु:ख प्रकट करने की क्षमता भी रखता है। इस प्रकार के भावनात्मक क्षणों में नाद ही भावना को प्रकट करने का एकमात्र साधन रह जाता है। हर्ष-विषाद, दु:ख, भय, प्रेम अथवा क्रोध के नादों से ही संगीत का जन्म होता है।

आदिकाल से ही संगीत का स्थान अनन्यतम रहा है। संगीत विश्व का नैतिक विधान है, वह मानव को दिव्य सौन्दर्य प्रदान करता है, मानव-मस्तिष्क में नवीन रंग भरता है और भावनाओं में संगीत उड़ान की नयनाभिराम सुषमा एवं निराशा के प्रांगण में आनन्द का प्रपात प्रवाहित करता है। संगीत के माध्यम से ही मानव अपने मनोगत भावों को प्रकट करने में समर्थ होता है। कुछ विद्वानों ने संगीत को ईश्वरीय वाणी कहकर अपनी धार्मिक भावनाओं को उजागर किया है। इलियट ने संगीत में मानव का सम्पूर्ण रूप प्रतिबिम्बित होते देखा है तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद का मत है कि मौलिक व आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से संगीत की महत्ता रही है, परन्तु संगीत के जन्म के विषय में कहा जाता है कि संगीत का आरम्भ कब

से हुआ ? -- इस प्रश्न पर इतिहास मौन है, फिर भी अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर इसके अनेकों उत्तर दिए जा सकते हैं । लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि संगीत का जन्म सृष्टि के साथ हुआ ।

संगीत वह कथन है जो मानव की भावनाओं, विचारों, जीवन के ढंग, चेष्टाओं और द्वन्द्व के निचोड़ को व्यक्त करता है और साथ ही व्यक्त करता है व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक द्वन्द्व को, किन्तु यह कला आधुनिक सन्दर्भों में एक प्रश्न मात्र बन कर रह गयी है । प्रश्न है कि आज के तकनीकी और अर्थशास्त्री युग में क्या संगीत कला रचनात्मक एवं वास्तविक रूप में विद्यमान है ?

काल की गति अविरल है, प्रलयंकर क्षणों में भी संगीत के सतत प्रवाह में व्यवधान असंभव है और न ही उसके अपने नैसर्गिक गति के अनुसार खण्ड एवं भाग हो सकते हैं । मानव ने स्व-मस्तिष्क की उपज के अनुसार इसे तीन वर्गों में विभाजित किया है । एक तो वह जिसमें उसके पूर्वजों के उत्थान-पतन सम्बन्धी क्रिया-कलाप प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के अनुकरणीय तत्व तथा उसके निजी जीवन की शुभाशुभ, सुखद-दुखद स्मृतियों का सामुच्य निहित है । प्रेरणा एवं शिक्षा के संबल इस बीते हुए समय को मानव ने भूतकाल की संज्ञा दी है । तत्काल सुनियोजित अथवा आकस्मिक क्रिया - शील कार्य-कलाप जिसका एक छोर विगत तथा दूसरा छोर आगत के साथ रहता है, वर्तमान कहलाता है । भूत और वर्तमान की पूर्ण जानकारी के पश्चात् ही संगीत के भविष्य के विषय में किंचित विचार करना संभव हो सकता है ।

भारतीय संगीत आध्यात्मिकता पर आधारित होने के कारण सत्यं, शिवं, सुन्दरं पर अवलंबित है । इसका ध्येय मानव के कोमल सात्विक गुणों का पूर्ण विकास है । इसकी महत्ता स्वीकार करते हुए गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है --

"नाहं वसामि बैकुण्ठे नाहं योगीनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद: ।।"

प्राचीन काल से ही संगीत ने इतना उच्च स्थान ग्रहण किया है कि वेदों के प्रणेता ने सामवेद को संगीत के साहित्य रूपी पीयूष से परिपूर्ण कर दिया है । भगवान शिव को हमारे प्राचीनतम संगीत वाद्य रुद्रवीणा का प्रणेता माना गया है, यह हमारे लिए अत्यन्त गौरव की बात है ।

वाद्यों का प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक अंग में व्याप्त है । इन्होंने मानवीय जीवन को सौन्दर्य एवं आह्लाद से पूर्ण कर दिया है । नृत्य व गायन, दोनों ही वाद्यों पर आधारित है । इस प्रकार वाद्यों के इतिहास में ही हमारी सभ्यता एवम् संस्कृति छिपी हुई है ।

वाद्यों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है जिसमें से भरत का वर्गीकरण ही गुणी लोग सर्वमान्य बताते हैं । इन्होंने वाद्यों की सीमा का निर्धारण करने के लिए उन्हें निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है --

(१) तत् (तंतु वाद्य)
(२) अवनद्ध (चर्म वाद्य)
(३) घन (आघात वाद्य)
(४) सुषिर (वायु वाद्य) ।

'तत्' वाद्यों का अर्थ तंतु वाद्य अर्थात् तना हुआ तार रेशम, डोरा या तांत का बना हुआ वाद्य है ।

'अवनद्ध' वाद्यों से तात्पर्य है किसी लकड़ी का कुंडा जो चमड़े से मढ़ा हुआ हो ।

'घन' वाद्यों से तात्पर्य धातु या लकड़ी के टुकड़े से किसी आकृति पर आघात करना, जिससे सस्वर ध्वनि निकलती है ।

'सुषिर' वाद्यों की श्रेणी में वह वाद्य आते हैं जो फूंक से बजाए जाते हैं।

वाद्यों की उत्पत्ति के विषय में हमारे यहां कुछ धार्मिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किए जाते हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक वस्तु के इतिहास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही प्रधान रहा है। जैसे कि धार्मिक दृष्टि से यह कहा जाता है कि त्रिपुर नामक एक राक्षस का वध करने के पश्चात् शिवजी प्रसन्न मुद्रा में नाचने लगे, उनके नृत्य को स्वर प्रदान करने के लिए स्वयं ब्रह्मा ने त्रिपुर के रक्त से मिट्टी सानकर ढोल बनाया तथा उसी के चमड़े से ढोल को मढ़ दिया। उन्होंने शिवजी के पुत्र गणपति को ताल देने के लिए कहा, तभी से वाद्य एवं ताल की सृष्टि हुई। ब्रह्मा को वाद्यों का जनक माना गया है। वाद्योत्पत्ति की यह कथा अगर कल्पित मानी जाए तो भी यह निश्चित रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति के अंग-अंग में वाद्यों का समावेश है।

भारतीय संगीत वाद्यों की श्रेणी में सितार स्थान शीर्षस्थ है। सितार आधुनिक युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा सर्वगुण सम्पन्न तत् वाद्य है। यह तो वह वाद्य है जिसके आकर्षण के कारण आज भारतीय कलाकार भारत में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी अपना यश फैला रहे हैं। इसी वाद्य ने भारतीय संगीत एवं संगीतज्ञों को देश के उच्चतम एवं उत्कृष्ट आसन पर बैठाया है।

सितार की उत्पत्ति एवं उसके विकास के विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। इन मतभेदों में कुछ का तो आधार है परन्तु कुछ निराधार हैं। लेकिन कभी-कभी कुछ विचारधाराएं निराधार होने पर भी समाज में इतनी गहरी जम जाती हैं कि उनकी जड़ें उखाड़ना कठिन हो जाता है। सितार के स्वरूपमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार

जो परिवर्तन होता रहा है, उसका कोई क्रमबद्ध लिखित इतिहास प्राप्त नहीं है। मध्य-काल में संगीतज्ञों का शास्त्र से सम्बन्ध विलग हो जाने के कारण आज इतनी जटिल समस्या हमारे सामने आ गयी है कि सितार का जन्म कब, कहां और कैसे हुआ ? -- यह अज्ञात है। आज यह विषय एक ऐसी उलझन बन गया है जिसको सुलझाने के लिए पर्याप्त गंभीर अध्ययन की अपेक्षा है। प्रस्तुत शोधकार्य में अधिक से अधिक विद्वानों के विचार प्रस्तुत करते हुए वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है।

अनेक विद्वानों का यह अनुमान है कि सितार भारतीय वाद्य है जिसमें मुसलमानों ने कुछ परिवर्तन करके वीणा को सितार नाम दे दिया है। भारत में मुसलमानों के आगमन से भारतीय संगीत पर ईरानी संगीत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय संगीत में कुछ ऐसे नवीन मेल, राग एवं गायन पद्धतियां प्रचलित हो गयीं जिनका उल्लेख प्राचीन भारतीय संगीत ग्रंथों में नहीं मिलता है। इस प्रकार के संगीत के लिए उस समय के प्रचलित भारतीय वाद्य वीणा, मृदंग आदि उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए। अतएव इन गायन शैलियों की संगत के लिए नवीन वाद्यों की आवश्यकता हुई। इस आधार पर अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक माना जाता है। हज़रत अमीर खुसरो ईरानी तथा भारतीय संगीत के उच्चकोटि के ज्ञाता थे।

सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आधुनिक काल में विद्वान एकमत नहीं हैं। इस आधार पर विभिन्न मतों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :--

(१) सितार प्राचीन भारतीय सप्ततंत्री वीणा, चित्रा वीणा अथवा सप्तसुर का पर्यायवाची है। यह विशुद्ध भारतीय वाद्य है जो अमीर खुसरो से बहुत पहले विद्यमान था।

(२) सितार भारतीय त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रूप है जिसका नाम बाद में तैतार फिर तेतार तथा अन्तत: सितार हो गया ।

(३) भारतीय त्रितंत्री वीणा को ही अमीर खुसरो ने सहतार कह कर पुकारा तथा आवश्यकतानुसार इसके रूप एवं आकार में थोड़ा परिवर्तन कर उसे तत्कालीन नवीन गान शैलियों की संगत करने योग्य बनाया ।

(४) अमीर खुसरो ने त्रितंत्री वीणा के आधार पर एक नवीन तीन तारों वाला वाद्य 'सहतार' बनाया तथा उस पर सरकने वाले परदों की व्यवस्था भी की । सितार पर बजने वाले बोल जैसे -- दा, रा, दिर आदि भी उन्हीं ने बनाए ।

(५) सितार त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रूप है जो कि कभी जंत्र, कभी यंत्र तथा अन्तत: सहतार अथवा सितार के नाम से विकसित हुआ ।

(६) सितार निबद्ध एवं अनिबद्ध तंबूरे में से निबद्ध तंबूरा है ।

(७) सितार का आविष्कार हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मेल से हुआ ।

(८) कुछ संगीतशास्त्री सितार का आविष्कारक खुसरो खां को मानते हैं ।

(९) अन्तत: सितार जो कि पर्शियन सहतार का अपभ्रंश है, मूलत: एक ईरानी वाद्य है ।

इस अध्याय में उपर्युक्त अभिमतों का समाहार करते हुए निम्नलिखित विषयों पर तार्किक दृष्टि से न्यायोचित एवं इतिहास-सम्मत तथ्य खोजने का प्रयास किया जा रहा है -- (क) सितार की उत्पत्ति वीणा से,

(ख) सितार की उत्पत्ति पर्शिया से,

(ग) सितार का क्रमिक विकास ।

(क) सितार की उत्पत्ति वीणा से

वीणा एक अतिप्राचीन भारतीय वाद्य है। यह एक सर्वमान्य एवं सत्य विचार है। भारत में वीणा की उपस्थिति हमें वैदिक काल से मध्यकाल तक के साहित्य पर दृष्टिपात करने से विदित होती है। इस समय भारत में सैकड़ों प्रकार की वीणाएं प्रचार में थीं। भरत के नाट्यशास्त्र, शार्ंग देव के संगीत रत्नाकर आदि प्राचीन ग्रन्थों में वीणाओं के प्रकार, उसके निर्माण एवं वादन-विधि का विस्तृत वर्णन है। आधुनिक काल में स्थित अनेक वाद्य इन प्राचीन वाद्यों के ही विकसित एवं परिवर्द्धित रूप हैं, परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में किसी भी वस्तु के लिए कुछ भी कहना अनुचित प्रतीत होता है। इस अध्याय में वीणाओं की आकृति एवं रूपादि का विवेचन करते हुए, वीणा का सितार से सम्बन्ध जानने की चेष्टा की जा रही है।

यह निर्विवाद है कि वीणा हमारे भारत का प्राचीनतम वाद्य है। इस वाद्य के आधार पर ही यूनान आदि बहुत से देशों ने भी समय-समय पर अपने यहां धनुषाकार वीणा सरीखे वाद्य बनाए तथा उनके विभिन्न नाम रख दिये। प्राचीन भारतीय शिल्प कृतियों में से मिलने वाले वाद्य बहुत ही प्रारंभिक स्थिति के मालूम होते हैं। भारहुत, भाजा, मथुरा, सांची, गांधार, अमरावती, नागार्जुन, कोणार्क आदि जगहों की शिल्प कलाओं में तथा दक्षिण भारत के बेलूर, चिदम्बरम आदि जगहों के मंदिरों के चित्रों से प्राचीन काल के तंतु वाद्यों का पता चलता है। तंतु वाद्यों में वीणा में मुख्यत:, गए बहुत से शतकों में, पर्याप्त परिवर्तन नज़र आते हैं। प्रारंभिक वीणा का दर्शन मौर्यकालीन कला में भारहुत में क्राइस्ट पूर्व तीसरे शतक में मिलता है। इस समय की वीणा बहुत ही मनोआकर्षक थी। यह वीणा धनुषाकार थी तथा उसका तूंबा नाव की आकृति के समान था। इसकी डांड पर समानान्तर तारें बिठाई जाती थीं। यह वाद्य एकांकी एवं साज संगत के लिए प्रयुक्त होता था।

दक्षिण भारत का इजिप्त के साथ काफी अच्छा व्यापारिक सम्बन्ध, पहले फोनेशियन के जरिए और फिर तालेमी और रोमन राजाओं के मार्फत चालू था। व्यापार के साथ ही संस्कृति के भी आदान-प्रदान से भारत एवं इजिप्त में एक ही समय में धनुषाकार वीणाएं मिलती हैं। परन्तु भारत में इससे पहले भी यह वीणाएं प्रचलित होने से इन वीणाओं को भारतीयता का गहरा साक्ष्य मिलता है। इसी प्रकार एकतंत्री वीणा भी प्राचीनतम भारतीय वीणाओं में से एक है। इसमें एक लकड़ी के सीधे डंडे पर एक तार तानकर बैठाया जाता था तथा दूसरे सिरे पर तूंबा लगाया जाता था। यह वाद्य प्रथमत: महाबलीपुरम में सातवें शतक में गंगावतरण चित्र में किन्नर के हाथ में दिखाया गया है। अजंता एवं बेरूठ की गुफाओं में मिली शिल्प कृतियों से यह वीणा इससे भी पूर्व की प्रतीत होती है। इस एकतंत्री जैसी वीणाओं में धीरे-धीरे बहुत उन्नति हुई। इनका रूपान्तर उत्तर या दक्षिण की बीन है जिसमें २४ अचल परदे होते हैं। आज के कई तंतु वाद्य इसी की देन हैं। भारतीय संगीत - साधनों का 'परदेशी निर्गमन' यह विषय बहुत ही रोचक है।[१] बोरोबुदूर, प्रम्बानम, चंपा और अन्य गुफाओं में भारतीय चित्र खुदे हैं, जो इस बात का साक्षात प्रमाण हैं कि भारत का संगीत पड़ौसी देशों में प्राचीन कालमें ही काफी मात्रा में चला गया था। जैसे कि यह सत्य है कि जाग, खमर और चम्पा पर भारतीय संस्कृति का असर है। बोरो-बुदूर गुफा में जो वाद्य बताए गए हैं, वह काफी कुछ भारतीय वाद्यों की तरह ही हैं। कच्छपी वीणा जो कि सरस्वती की वीणा है, आज भी फिलिपिन्स में मौजूद है जिसे 'कागजापी' कहा जाता है।[२] इन विचारों से यह सिद्ध होता है कि भारतीय वाद्यों का विदेशी गमन तथा वहां के अनुरूप ही विकसित होकर प्रचलित होना सर्वमान्य तथ्य है। परन्तु इसके साथ इसकी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए उस समय, जबकि वह वाद्य किसी अन्य देश में मिलता है, से पहले भारत में उसका अस्तित्व अनिर्वचनीय है। जैसाकि वीणा के साथ यह तथ्य खरा उतरता है। परन्तु यह विचार सितार के संबंध

में उचित नहीं जान पड़ता । क्योंकि सितार का उल्लेख भारत से पहले अन्य पश्चियायी देशों में काफी मिलता है ।

जो विद्वान वीणा से सितार की उत्पत्ति मानते हैं, उनकी संख्या सर्वाधिक है । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे सम्भवत: किसी भ्रमवश ही सितार के सम्बन्ध में ऐसा कह गए हैं । सन् १८९९ की लिखी हुई राग प्रकाशिका में लेखक ने संगीत संबंधी अनेक जानकारियां देने के साथ-साथ सितार के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा है । इन्होंने वीणा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए सितार के स्वरूप की कल्पना की है । इनके अनुसार सितार वीणा का ही एक परिवर्तित रूप है ।[३] उन्होंने सितार के संबंध में किसी विशेष वीणा का उल्लेख नहीं किया है ।

सितार-सिद्धान्त नामक एक अन्य पुस्तक में लेखक ने सितार को वीणा से उत्पन्न मानकर कई उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है । इनके वक्तव्य में सितार को मुरुयष्टि, महती, सप्ततंत्री एवं परिवादिनी आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता था । सितार वाद्य वीणा का ही सरल एवं संशोधित रूप है । सितार के आविष्कार से पूर्व वीणा का ही प्रचार था । वीणा का उल्लेख हमें प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी मिलता हैं जिसमें वीणा को समग्रतत् वाद्यों की जननी कहा गया है । इसके अनेक भेद हैं जिनमें से कतिपय भेदों का उल्लेख तत् वाद्यों का निर्देश करते हुए शुभंकर ने संगीत दामोदर में इस प्रकार बताया है[४]:--

अलाबणी ब्रह्मवीणा किन्नरी लघुकिन्नरी ।
विपंची वल्लकी ज्येष्टा चित्रा घोषवती जया ।।
हस्तिकागुंजिका कूर्मी शारंगी परिवादिनी ।
त्रिशती शतचन्द्रीय नकुलोष्टी च ढ़ंसवी ।।

औडुम्बरी पिनाकी च निबन्धः शुष्कलस्तथा ।
गदावरण हस्तन्च रुद्रोऽथ शरमण्डलः ।।
कपिलासौ मधुस्यन्दी घोणी त्यादिततं भवेत् ।

उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त औरभी वीणाओं के अनेक भेद हैं । आदिकालीन वीणाएं आकार में बड़ी होती थीं, उनमें सात अथवा अधिक तारों का भी प्रयोग होता था, परन्तु परदे एवं खूंटियों का अभाव था । उनकी उपयोगिता यज्ञशाला अथवा राज-प्रासादों में होती थी । इन्हें उठाकर सर्वत्र ले जाना कठिन होता था । साथ ही उन्हें बजाने एवं सुनने का अधिकार भी सबको नहीं था । इसी कारण लोगों को एक ऐसे वाद्य की आवश्यकता हुई होगी जो कि उठाकर कहीं भी ले जाने एवं बजाने में सुलभ हो । ऐसा सोचकर आदिकाल की वीणा के विपरीत सितार, जो कि एक लघु वाद्य है जिसे वादक आसानी से मंच पर लेजाकर बजा सकता है, का निर्माण हुआ । इसमें सात तार होते हैं तथा इसे मिज़राब से बजाया जाता है । इसमें बाज का तार महत्व-पूर्ण है, जो कि मध्यम में मिलाते हैं । इतना भेद होते हुए भी सितार आदिकालीन वीणा का ही एक भेद 'चल वीणा' के नाम से प्रसिद्ध है । महाभारत में सप्ततंत्री (सितार) को वीणा ही कहा गया है । जैसे --

सप्तर्षयः सप्त चाय्यहूंगानि ।
सप्ततन्त्री प्रथिता चैव वीणा ।।

इस प्रकार नामान्तर से हमें सितार का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है । इसी प्रकार एक स्थान पर जगदीशनारायण पाठक ने सितार का श्रीगणेश देवदत्ता वीणा के आधार पर बताया है ।[५] उनके अनुसार यह वीणा वाग्देवी सरस्वती को देवताओं से उपहार रूप में प्राप्त हुई थी । इसलिए इसका नाम देवदत्ता पड़ा । देवताओं ने स्वर ब्रह्म से विभूषित (परदों वाली) नए ढंग की वीणा बनाई थी जो स्वरज्ञान से

हीन शिक्षार्थियों के लिए उपयोगी थी, इसलिए 'देहि स्वर ज्ञान मीतीत मंगले' यह कहते हुए स्वर ज्ञान के भिक्षुक नारद को देवताओं ने प्रसन्न होकर यह वीणा दे दी। यह प्रसंग गर्ग संहिता में इस प्रकार है :--

ततः प्रसन्ना वाग्देवीनारदाय महात्मने।
देवदत्तां ददौ वीणां स्वर ब्रह्म विभूषिताम्।।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सितार देवदत्ता वीणा का ही सरल प्रकार होगी जो कि नए सीखने वालों के लिए उपयोगी थी। इस प्रकार लेखक सितार को देवदत्ता वीणा बता रहे हैं। इसके पश्चात् लेखक ने सितार की उत्पत्ति मुरुयष्टि से बताने का प्रयत्न किया है।[५] इनका कथन है कि मुरुयष्टि शब्द की अगर व्युत्पत्ति की जाए तो इस आधार पर भी इसका अर्थ सितार ही बनता है। गर्ग संहिता में इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार बतायी गयी है :--

मुरुणा = उंगलीवेष्टनेन यत्ते = संगच्छते इति सा मुरुयष्टिः।

अर्थात् मिज़राब से बजायी जाने वाली। सितार भी मिज़राब से बजायी जाती है। निम्नलिखित श्लोक में सर्वत्र वीणा के बाद मुरुयष्टि का पृथक प्रयोग भी यह बोध कराता है कि वीणा के बाद का मिज़राब से बजाने वाला यह वाद्य सितार का ही नामान्तरित है तथा इसकी उत्पत्ति वीणा के बाद हुई है।

वेणु वीणा मृदङ्गानि मुरुयष्टि युततिच।
ताल दुन्दुभिभिः सर्द्धि वादयन्ति यथाविधिः।।

सितार को वीणा से जोड़ने का यह प्रयत्न मात्र लेखक की कल्पना ही दृष्टि-गोचर होती है। जैसे : क्योंकि मुरुयष्टि मिज़राब से बजायी जाती थी इसलिए सितार है अथवा मह्ती जो कि मध्यम पर आघात करके बजायी जाती थी, इसलिए सितार है, परन्तु इनका कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण न होने से यह विचार अमान्य है।

एक कवि की कल्पना इस प्रकार की अथवा इससे भी सुन्दर हो सकती है परन्तु अगर वह सत्य न होकर मात्र मन का उद्गार हो तो उसे तार्किक नहीं माना जा सकता ।--

इसी प्रकार कुछ अन्य मतावलम्बी जो कि सितार को भारत में प्राचीनकाल से मानते हैं, वह अपने विषय के पक्ष में निम्न दलील प्रस्तुत करते हैं [६] :--

(क) अनेक स्थानों से प्राप्त प्राचीनशिलालेखों पर अंकित संदर्भों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मुस्लिम काल से पूर्व ही सितार भारत में था । भारत में मौर्यकाल एवं गुप्त-काल कला की दृष्टि से उन्नति, विकास, प्रचार एवं प्रसार का स्वर्णयुग रहा है । यूनानी हैली आदर और दीप आदि लोग सप्तसुर यानी सितार को यहां से ले गए एवं इसके रूप एवं आकार में परिवर्तन करके इसका नाम हार्प रख दिया ।

(ख) सत्रहवीं शताब्दी में कुछ लोग स्पेन से भारत आए । वे इस वाद्य पर मुग्ध हो गए तथा यहां के उस्तादों से इसके वादन की शिक्षा ग्रहण की । इसका नाम इन्होंने गिटार रख दिया ।

(ग) समुद्रगुप्त के वीणा-वादन (सहतार वादन) पर प्रसन्न होकर अरब के लोग उनकी प्रशंसा करते हैं ।

श्री वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी सितार की उत्पत्ति मतंग मुनि के द्वारा बताते हुए कहते हैं [७] कि 'मतंग मुनि, जिनका जन्म छठी से आठवीं शताब्दी के बीच का है, उन्हीं ने संसार में सर्वप्रथम सारिकायुक्त तत् वाद्य बनाया जिसका नाम किन्नरी वीणा रखा गया । यह वाद्य समस्त भारत ही नहीं, वरन् ईरान से होता हुआ यूरोपीय देशों में भी फैल गया । मतंग मुनि स्वयं चित्रा वादक थे तथा चैत्रिक नाम से भी विख्यात थे, यही सितार के जन्मदाता थे'।

सितार की चर्चा करते हुए ओंकारनाथ ठाकुर ने महाराष्ट्र में प्रचलित सितार को सतार कहने की प्रथा का आश्रय लेकर इस शब्द की व्युत्पत्ति सप्ततंत्री से मानी है । इनके अनुसार सप्ततंत्री को ही सहप्तार, सत्तार और फिर सतार या सितार कहा जाने लगा ।[८]

उमेश जोशी जी अपने वक्तव्य में सितार की उत्पत्ति प्राचीनकाल में ही बताते हुए निम्न उल्लेख प्रस्तुत करते हैं कि 'इस्तम्बोल के प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालय मक्तबे सुलतानियां जिसे आजकल मक्तबे मजहूरियां कहते हैं, टर्की में ही नहीं अपितु समस्त पूर्वी देशों में सबसे बड़ा और विशाल है। इस पुस्तकालय के अरबी विभाग में सन् १७४६ ई० का लिखा हुआ एक काव्य-ग्रन्थ मिला है, जो टर्की के प्रसिद्ध राजा सुल्तान सलीम ने अत्यन्त यत्नपूर्वक किसी प्राचीन प्रति के आधार पर लिखवाया था। यह हरीर पर लिखा है। यह संग्रह तीन भागों में है। प्रथम भाग में अरब के आदि कवियों का संक्षेप में परिचय दिया है। दूसरे भाग में मुहम्मद साहब के प्रारंभिक जीवन से लेकर अन्त तक के कवियों का वर्णन है। तीसरे भाग में अब्बास कुल के आरम्भ से प्रसिद्ध राजा खलीफा हारुनुल रसीद के दरबारी कवियों एवं अपने समय तक के गायक एवं कवियों का वर्णन है। पुस्तक का नाम 'सेजरुल उकील' है। इसका संग्रहकर्ता अरबी काव्य का कालिदास अब्बु हमीर अब्दुल असमई है जो इस्लाम के प्रसिद्ध राजा खलीफा हारुनुल रसीद का प्रसिद्ध गायक वादक व कवि था। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८६४ ई० में तथा दूसरा सन् १९३२ में बेरूत (फिलिस्तीन) से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की भूमिका में प्राचीन अरब की सामाजिक अवस्था का वर्णन है। मेला (ओकाज़) और कविता की बेहर को गाने के लिए एक सुन्दर वाद्य का भी वर्णन है जो सितार के तूंबे की बजाय बकरी की खाल से मढ़ा जाता था तथा इसमें भी सात तार होते थे।

हज़रत मुहम्मद से १६५ वर्ष पूर्व अरहम बिनतोई नामक एक गायक और कवि हो गया है जो ओकाज़ के मुशायरे में निरन्तर तीन साल तक आता रहा था। इसकी तीन कविताएं सोने के पत्र पर अंकित कर मक्का के मंदिर में लटकायी गयी थीं। यह लिखते हैं कि वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रमादित्य के राज्य में रहते हैं। वह बड़ा दानी, धर्मात्मा, प्रजापालक तथा इल्मे मूसीक़ी का ज्ञाता है। इसके सहतार-वादन से

दिल की कली-कली खिल जाती है। परन्तु ऐसे समय में हमारा अरब ईश्वर को भूलकर भोगविलास में लिप्त था। हृदय से हम इस कला को भूल गए थे। सारे देश में अमावस्या की रात्रि के समान अन्धकार छाया हुआ था। परन्तु अब जो सूर्य की प्रात:कालीन किरणों के समान प्रकाश दिखाई देता है, वह कैसे हुआ? यह उसी धर्मात्मा राजा विक्रमादित्य की कृपा है जिसने हम विदेशियों को भी अपनी दया-दृष्टि से वंचित नहीं रखा और पवित्र धर्म का संदेश देकर अपनी जाति के विद्वानों को यहाँ भेजा जो हमारे देश में सूर्य के समान चमकते थे। जिन महापुरुषों की सहायता से हमने ईश्वर-ज्ञान, संगीत-ज्ञान, काव्य-ज्ञान और सामाजिक ज्ञान जाना और सत्यपथगामी होकर आत्म तल्लीनता के लिए 'सहतार' वादन जाना। वे लोग राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में विद्या धर्म मूसीकी और सहतार के प्रचार के लिए आए थे,' आदि तथ्य निम्न नज़्म से प्रकट होते हैं :--

इत्रंश्शफाई सनतुल विक्रमनतुन,
फहलमीन, करीमुन, यतीफीहा, वयोवरसस,
विहिल्लाय समीमिन, एलाभोतकर्त्तनान।
विहिल्लाय मूही कैदमिन होता य फखरू।
फज़ल असारी, नह भेओ, सारिम विजहोमिन ;
परीदुनं विजामिल, काज़न विनय ख़तरू।
यह सब दुन्या कनावेफनतिकी विज़येलीन,
अवदरी विलला महीरातुन फकैफ वसबटू,
कउन्नी सजा माजकर, लेहदा बालहदा।।

उपर्युक्त तथ्यों से ऐसा स्पष्ट होता है कि इन सब मतों को मानने वालों का कथन यही है कि सितार प्राचीन सप्तसुर, सप्ततंत्री अन्यथा परिवादिनी का ही विकसित रूप है। श्री उमेश जोशी के उदाहरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि सहतार शब्द

उस समय भी कम से कम अरब में तो था किन्तु वर्तमान सितार का कोई रूप उस समय विद्यमान था यह स्पष्ट नहीं होता। अनेक ग्रन्थों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हो गयी है कि भारत में सर्वप्रथम किन्नरी वीणा, जिसके प्रणेता मतंग मुनि थे, में सारिकाओं का प्रयोग किया गया।[१०] मतंग का काल टठी से आठवीं शताब्दी का माना जाता है अत: आधुनिक सितार को जिसमें कि आरम्भ से ही सारिकाओं का प्रयोग होता रहा है, को भारत में मतंग से पहले मानना सर्वथा युक्तिसंगत नहीं है।

उपर्युक्त संदर्भ के साथ ही इस विषय में यह भी ध्यान देने योग्य है कि समुद्रगुप्त के समय की प्राचीन वीणाएं साधारणत: धनुषाकार होती थीं जिनमें परदों की व्यवस्था की कोई संभावना नहीं हो सकती। समुद्रगुप्त (विक्रमादित्य) एक बड़ा संगीतप्रेमी व वीणा-वादक था यह बात सत्य है परन्तु उस समय के प्राप्त सिक्कों पर जिस वीणा का चित्र खुदा हुआ है, वह धनुषाकार आकृति की है।[११] इस प्रकार न तो उसमें तूंबा है, और न ही तबली को कोई स्थान है। अगर फिर भी सितार का आविष्कार सप्ततंत्री वीणा से माना जाए तो उसका नाम-परिवर्तन कैसे हो गया -- यह एक बड़ा प्रश्न बनकर सामने आता है क्योंकि आज रुद्रवीणा, सरस्वती वीणा तथा विचित्र वीणा आदि वाद्य भारतीय संगीत में प्रचलित हैं। इनके मौलिक रूप में भी परिवर्तन हुआ है, परन्तु इनके नाम वही हैं। इसी तरह अगर सप्ततंत्री वीणा में कोई अल्प परिवर्तन किया होता तो उसका नाम सप्ततंत्री ही क्यों नहीं रहा। सितार में आज दो सौ वर्षों से कितने ही परिवर्तन हुए तथा हो रहे हैं, परन्तु उसका नाम सितार ही है। इस तर्क के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सप्ततंत्री वीणा एवं सितार में तारों के अतिरिक्त किसी तरह की समानता नहीं है और तारों में भी उनका जो क्रम, नम्बर तथा मिलाने की विधि है, वह भी उस सप्ततंत्री वीणा से भिन्न है।

श्री प्रज्ञानंद स्वामी सप्ततंत्री वीणा अथवा चित्रा वीणा को ही सितार की जननी मानते हुए लिखते हैं [१२] कि तीसरी से आठवीं शताब्दी के मध्य भारतीय समाज में सप्ततंत्री वीणा प्रचार में थी तथा हमारा आधुनिक सितार उस प्राचीन सप्त-तंत्री वीणा अथवा चित्रावीणा का ही परिवर्तित रूप है। परन्तु इसके साथ भी किसी प्रकार की ऐतिहासिकता आदि का पता नहीं चलता, न ही इसके पीछे कोई तथ्य दृष्टिगोचर होता है क्योंकि भरत के नाट्यशास्त्र में चित्रावीणा को द्वितीय श्रेणी की वीणाओं में वर्णित किया गया है तथा इसके ७ तारों के अतिरिक्त इसमें कोई भी उल्लेख नहीं है।[१३] भरत ने जहां धातुओं के बारे में लिखा है, वहां वह बताते हैं कि इसमें सीधे हाथ व उल्टे हाथ की क्रियाएं समान होती हैं। इसके बाद की पुस्तकें चित्रा-वीणा के विषय में बताती हैं कि इस वीणा पर सीधे हाथ से आघात किया जाता था तथा उल्टे हाथ से आघात को रोका जाता था। दसवीं शताब्दी की अभिनवगुप्त द्वारा की गई नाट्यशास्त्र की टिप्पणी में भी यह माना गया है कि चित्रावीणा एक हार्प थी।[१४] वह मत्त कोकिला को ही प्रधान मानते हैं क्योंकि इसमें तीन सप्तकों के स्वरों के लिए अलग-अलग २१ तार होते थे। जबकि विपंची एवं चित्रा में क्रमशः ९ तथा ७ तार ही होते थे। उस समय के चित्रावीणा के वर्णन से कोई भी प्रमाण ऐसा नहीं मिलता जिससे सितार को चित्रावीणा का विकसित रूप अथवा चित्रा वीणा से उत्पन्न माना जा सके। केवल तारों की संख्या से ही अगर सितार को चित्रावीणा से उत्पन्न मानें तो इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य है कि सितार में सात तारों का प्रयोग अभी आरंभ हुआ है और हम यह कहें कि अभी भी सितार में सात तार ही प्रयोग किये जाते हैं तो यह गलत है क्योंकि लगभग ५० प्रतिशत कलाकार ऐसे हैं जो छः तार ही प्रयोग करते हैं[१५] तथा कुछ समय पूर्व तक कुछ घरानों में ५ तारों वाले सितार की उपस्थिति के प्रमाण भी हमें मिलते हैं[१६] तथा उससे पूर्व सितार में तीन तार ही होते

थे [१७] जिसकी वजह से वह 'सहतार' कहलाया जाता था, यह एक सर्वमान्य सत्य है। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार तथा चित्रा वीणा का जन्य-जनक सम्बन्ध नहीं था।

कुछ अन्य मतावलंबी भी सितार तथा चित्रावीणा को सम्बन्धित बताते हुए कहते हैं कि सितार व चित्रा आपस में एक शब्द सिथारा से जुड़े हुए हैं।[१८] परन्तु सिथारा एक सामान्य नाम है जो कि किसी तंत्र वाद्य के लिए ग्रीस एवं अरब में प्रयुक्त होता था।[१९] चित्रा एवं सिथारा के नामों का आपसी सम्बन्ध भी भाषा की दृष्टि से ठोस नहीं है। यदि ऐसा होता तो सितार की उत्पत्ति पश्चिमी एशिया में होगई होती और यह इस तथ्य के बिल्कुल विपरीत होती कि सितार शब्द का अर्थ है तीन तार इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सितार की उत्पत्ति में किन्नरी, सप्ततंत्री, चित्रा-वीणा आदि किसी का कोई स्थान नहीं है।

विद्वान संगीतशास्त्रियों का एक वृहत समूह सितार का आविष्कारक अमीर खुसरो को मानने के पक्ष में है। इन विद्वानों के अनुसार सितार की उत्पत्ति किसी प्रकार की भी वीणा से की गयी हो परन्तु अमीर खुसरो द्वारा ही की गयी है। इस प्रकार के अनेक कपोल-कल्पित विचारों की पुनरावृत्ति कर-करके सितार और अमीर खुसरो को इतनी मजबूती से जोड़ दिया गया है कि इस विचार को बदलना तथा सही तथ्य को सामने लाना भी सहज प्रतीत नहीं होता। सितार को अमीर खुसरो एवं वीणा से जोड़ने वाले विद्वानों के मत निम्न प्रकार हैं:--

श्री ओ० गोस्वामी जिन्होंने अमीर खुसरो को सितार का आविष्कर्ता माना है वह प्राचीन वीणा के वादन को क्लिष्ट एवं दुरूह बताते हुए निम्न विचार व्यक्त करते हैं[२०]:-- **"Amir Khusrau who found it impossible to handle the 'Veena' for its complexity was led to resurrect this old musical instrument and innevate it",**

इसी प्रकार उमेश जोशी के अनुसार सितार का जन्म खिलजी युग की महत्व-पूर्ण घटना है।[२१] यह सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो द्वारा वीणा से बतलाते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि इसी पुस्तक के पिछले अध्यायों में यह सितार की उत्पत्ति समुद्रगुप्त के समय में बता रहे हैं। इसी प्रकार के मत भ्रान्त धारणाओं के प्रणेता होते हैं।

सितार की उत्पत्ति से संबंधित विचार व्यक्त करते हुए श्री व्यास कहते हैं[२२] कि 'वस्तु वाद्यों में वीणा सर्वोत्तम मानी जाती है और वैदिक काल में उसका बहुत प्रचार यही बताता है कि संगीत कला ने उस समय भी बहुत उन्नति कर ली थी, जबकि संसार की बड़ी-बड़ी जातियां सभ्यता के निकट भी नहीं पहुंच पायी थीं। वीणा का परिवर्तित रूप ही सितार है, जिसके आविष्कारक अमीर खुसरो बताए जाते हैं'। इस प्रकार यह सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वीणा को तो निश्चित रूप से उत्तरदायी मानते हैं परन्तु अमीर खुसरो द्वारा सितार का निर्माण हुआ, इस विषय पर सर्वमान्य मत देकर अपना कोई मत नहीं देते हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक मानने में संदिग्ध हैं।

आज के प्रसिद्ध सितार वादक उस्ताद रहीस खां का मत भी कुछ उपरोक्त विचार से ही संबंधित है। रहीस खां के अनुसार सितार प्राचीन वीणाओं का ही विकसित रूप है तथा जवारी, परदे आदि इसमें भारतीय वाद्यों की विशेषतायें हैं।[२३] एक अन्य विवरण में भी सितार के आविष्कार का श्रेय अमीर खुसरो को देते हुए लिखा हुआ है कि यह वाद्य अमीर खुसरो ने वीणा को बदल कर बनाया।[२४] बाद में यह सितार कहलाया तथा इसके तारों में वृद्धि की गयी। इसी प्रकार श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार 'सितार का जन्म वीणा के एक प्रकार के आधार पर हुआ है'[२५]। भारतीयता को महत्व देते हुए इसे सहज स्वीकार किया जा सकता है किन्तु दूसरे मतानु-

सार इसका निर्माण चौदहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो द्वारा हुआ। इन्होंने मध्यमादि वीणा पर तीन तार चढ़ाकर इसका आविष्कार किया। उस समय इसका नाम सहतार था, बिगड़ते-बिगड़ते सितार हो गया'।

उपरोक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव अपने इस उद्धरण में कुछ सत्यता की तरफ प्रयाण करते प्रतीत होते हैं कि जो लोग सितार को वीणा से उत्पन्न मानते हैं, वे भारतीयता के कारण ही मानते हैं परन्तु इसके बावजूद इन्होंने केवल दो मतों का प्रतिपादन ही किया है, अपना कोई मत नहीं दिया है एवं दोनों मतों में यह वीणा से ही सितार की उत्पत्ति बता रहे हैं।

एक अन्य शोधकर्त्री के अनुसार अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' में सितार को सहतार कहा गया है। 'सेह' फारसी शब्द है जिसका अर्थ तीन है। यह वाद्य अमीर खुसरो ने वीणा की नकल करके बनाया। बाद में यह सितार कहलाया तथा उसके तारों में वृद्धि हो गयी।[२६] परन्तु यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि संगीत पारिजात में सितार शब्द का प्रयोग ही नहीं किया गया है।

सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ अन्य विचारकों के मत इस प्रकार हैं -- कुछ लोग इस बात को मानते हैं कि वीणा का एक तूंबा काटकर हज़रत अमीर खुसरो ने उसे सितार की शक्ल दे दी। कुछ विद्वान यह ख्याल करते हैं कि यह कोई पुराना वाद्य था जिसमें अमीर खुसरो ने एक या दो तार ईजाद करके सितार नाम दे दिया।[२७] इसी प्रकार सितार को वीणा से संबंधित करते हुए भैरोंप्रसाद श्रीवास्तव कहते हैं[२८] कि 'वीणा वाद्य को नाद ब्रह्म की प्रतिनिधि और सितार वाद्य को वीणा वाद्य की अभिन्न प्रकृति कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इस पर मृदंग की हंस ध्वनियां भी व्यक्त की जा सकती हैं तथा वीणा और सितार दोनों के सात तार होते हैं'। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सितार पर वीणा एवं पखावज दोनों की सामग्री बजाई जाती है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि सितार

का निर्माण वीणा से हुआ । इनकी वीणा और सितार में सात तारों की समानता भी तर्कसंगत नहीं है इसे हम पहले ही गलत सिद्ध कर आए हैं ।

सत्यता को उद्घाटित करने का प्रयास करते हुए निम्न उल्लेख में डा० सैयद रागिन हुसेन भी अमीर खुसरो को सितार से संबंधित न मानते से प्रतीत होते हैं । वह अपने लेख में लिखते हैं[२९] -- **"In most of the books it has been vehemently said that sitar was not invented by Amir Khusrau".**

सितार को अमीर खुसरो के साथ जोड़ने की परम्परा को कैप्टेन विलर्ड ने बढ़ावा दिया जिसका अनुकरण कर आज तक सितार को अमीर खुसरो से जोड़ने की आधारहीन कल्पना की पुनरावृत्ति होती आ रही है । कैप्टेन विलर्ड का अनुकरण करके ही मोहम्मद करम इमाम ने सितार की ईजाद अलाउद्दीन खिलजी के समय के अमीर खुसरो द्वारा बता दी है जबकि कैप्टेन विलर्ड ने अमीर खुसरो का कोई काल नहीं बताया है । यही वह संगीतशास्त्री थे जिन्होंने सितार की आविष्कृति अमीर खुसरो से बता कर ऐतिहासिकता से रहित कथन को बढ़ावा दिया है[३०] । इस मत के अनुयायियों में कैप्टेन विलर्ड एवं मोहम्मद करम इमाम खां का विचार सर्वोपरि है । इनके बाद के विद्वानों ने मोहम्मद करम इमाम खां का यह मत तो मान लिया कि सितार अमीर खुसरो ने ईजाद किया, लेकिन बीन के स्थान पर न जाने कौन-कौन सी वीणाओं को आधार मानकर अपने विचार प्रकट कर दिए हैं । मोहम्मद करम इमाम अपने ग्रन्थ में सितार के उद्भव में बीन को सहायक बताते हुए लिखते हैं[३०] कि `हज़रत अमीर खुसरो ने बिलएवज़ बीन के सितार निकाला + + + + और अपने सितार में एक तूंबा मादि पुश्त लगाया और १४ परदे रक्खे तीन तार कायम किए, वो एक उंगली में मिज़राब पहनकर हर नशिस्त से बजाता है ।`

इससे पूर्व ही इन्होंने अपने पुस्तक में लिखा है [३१] कि `अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन गौरी के समय में गाने की एक विधि निकाली जिसे लोग क़व्वाली कहते हैं। इसके नायक भी अलग-अलग होते हैं। सर्वप्रथम तो अमीर खुसरो, दूसरे सुल्तान शर्की जौनपुर के बादशाह भी निपुण नायक थे, तीसरे चंचल, चौथे बाद बहादुर खां, पांचवें सूरज खां, छठे बड़े चांद खां तथा सातवें इस जमाने के गुलाम रसूल खां है।` इस प्रकार यह क़व्वाली के आविष्कर्ता भी अमीर खुसरो को ही मानते हैं जबकि अनेक शोधकार्यों के अनुसार क़व्वाली जैसी गायन शैली अमीर खुसरो से काफी समय पूर्व ही प्रचार में थी।

मोहम्मद करम इमाम पुनः सितार की ईजात पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं [३२] कि `सितार हज़रत अमीर खुसरो ने ईजात किया और फ़क़त तीन तार, एक आहनी और पीतली और निस्फ़ तूंबा से हम वज़न `बीन` कर दिया।`

इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर मोहम्मद करम इमाम लिखते हैं [३३] कि `ढोल व सितार अमीर खुसरो ने निकाले। ताऊस जो सितार की शक्ल का होता है, उसमें नीचे तूंबे में मोर की शक्ल बना दी जाती है। उसे गज के साथ बजाते हैं।`

इसके अतिरिक्त भी मोहम्मद करम इमाम ने अपने ग्रंथ में सितार से संबंधित बहुत महत्वपूर्ण जानकारियां दी हैं।[३४] इसमें सितार बजाने के कायदे बताए हैं तथा लिखा है कि `सितार अमीर खुसरो ने निकाला। इसमें तीन तार होते हैं। एक लोहे का तथा दो पीतल के। तूंबा आधा रखते हैं। सितार में एक सप्तक पूरा तथा दो सप्तक आधे होते हैं। पहली सप्तक मन्द्र मध्यम से शुरू होती है। दूसरी मध्य तथा तीसरी सप्तक ग तक होती है। बीच की सप्तक पूरी होती है। ड, ड़, डर ये बोल सीधे हाथ से निकलते हैं। जिससे यह बोल निकलते हैं, उसे ज़खमा कहते हैं। `डांव` को बाएं हाथ से निकालते हैं, इसे मीड़ कहते हैं। `ड` और `डर` को आमद (आना) और `ड़` को जाना कहते हैं। `डांव` को बांए हाथ की बीच की उंगली से निकालते हैं। बाकी सारी हरकतें इन चारों पर आधारित हैं।

इस प्रकार मादन-अल-मूसीक़ी में सितार से संबंधित काफी विस्तृत चर्चा है परन्तु लेखक सितार का आविष्कारक किसी भ्रमवश ही तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो को बताते हैं। सितार के साथ अमीर खुसरो को जोड़ने की प्रथा को बढ़ावा देने वाले कैo विलर्ड एवं मोहम्मद करम इमाम ही हैं जिनके कारण इन पुस्तकों के बाद जितनी भी पुस्तकें लिखी गयीं, सभी में कैo विलर्ड एवं मोहम्मद करम इमाम का अनुकरण कर तथा कुछ अपनी तरफ से जोड़कर, बिना सोचे समझे सितार का प्रणेता अमीर खुसरो को कह दिया गया है। कैo विलर्ड एवं मोहम्मद करम इमाम ने संभवत: किसी अज्ञानता के कारण ही इस अमान्य एवं ऐतिहासिकता से विमुख विचार को अपने ग्रन्थों (मादन-अल-मूसीक़ी आदि) में स्थान दे दिया है। इस कथन पर अगले भाग में विस्तारपूर्वक बतलाया गया है।

इसी संदर्भ में श्री अरविन्द पारिख भी सितार का जनक अमीर खुसरो को बताते हुए लिखते हैं [३५] कि प्राचीन वाद्य बीन को देखकर अमीर खुसरो के मस्तिष्क में सितार की कल्पना आयी।

इसी से साम्य रखते हुए एक अन्य लेख में श्री चैतन्य देसाई भी 'सितार को बीन का ही आधुनिक एवं संशोधित रूप मानते हुए कहते हैं कि 'बीन प्राचीन वीणा का आधुनिक रूप है।' [३६]

पंडित रविशंकर भी अपनी पुस्तक 'माई म्यूज़िक : माई लाइफ़' में सितार को बीन से सम्बन्धित करते हुए निम्न विचार व्यक्त करते हैं [३७] :--

"One of the innovations that(Amir Khusrau) brought to the Sitar(Sehtar) was to reverse the order of the strings, giving the instrument(the present day universal arrangement) of the string. Another Stringed instrument, 'The Been' or the "Veena" still has its arrangement in the old inside-out order, that is the main playing string is on the

inside and the Brass strings are on the part of the instrument that faces towards the hand and the wrist of the musician as he holds the instrument. Another improvement that Amir Khusrau braught to the sitar was to make the frets moveable (Frets are the metal strips or bars that go across the fingure board of the instrument such as Veena) The frets were fixed with the wax and could not be moved, but Amir Khusrau attached the silken strings or the thin gut to the frets and tied them at the back of the sitar's neck so that the player could slide them up and down. According to the method the fingure board was devided into the seven note otave after eliminating some frets and the frets could be moved up and down for the use of half or the whole time".

उपर्युक्त वर्णन में पं० रविशंकर सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो द्वारा बताते हुए कहते हैं कि 'उस समय वीणा पर मोम के द्वारा परदे चिपकाए जाते थे तथा अमीर खुसरो ने सितार पर रेशम की या तांत की डोरी से परदे बांधे जिससे कि उन्हें आसानी से ऊपर-नीचे सरकाया जा सके । यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पं० अहोबल द्वारा लिखित 'संगीत पारिजात' में पहली बार 'वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना' का वर्णन किया गया[३८] तथा तंजोर के राजा रघुनाथ नायक के राज्यकाल (१६१४-१६३२) में गोविन्द दीक्षित संगीतशास्त्री द्वारा प्रथम बार भारतीय दक्षिणी वीणा में अचल परदे लगाए गए ताकि उस पर सब राग बजाए जा सकें । इससे पूर्व वीणा पर चल परदे ही होते थे तथा उनकी संख्या निर्धारित नहीं थी, आदि वर्णन निम्न प्रकार है :--

Pt. Ahobala, the author of Sangit Parijata(early 17th Centyry) diserves special attention. He seems to be first musicologist to discribe the value of notes in terms of length of the string on the Veena. Sangit parijata is one of the important works relating to the Hindustani System. After this during the regin of Raghunath Nayak of Tanjavoor(1614-32) a musicologist called Govinda Dikshita fixed the frets of south Indian Veena so that all the ragas could be played. This fixing of frets is an important land mark in the development of Southern Veena. Before this the frets on the Veena were moveable and their number varied, still, earlier the veena had fingureboard without frets. The earliest veena was one with open strings which involved elaborate processes of tunning and returning"

उपर्युक्त विवरण से पं० रविशंकर द्वारा दिया गया सितार के परदों के सम्बन्ध में उल्लेख असत्य सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार के अप्रामाणिक एवं असम्बद्ध विचार व्यक्त करने से पं० रविशंकर जी की इस सम्बन्ध में अल्प जानकारी का ही आभास मिलता है।

इसी संबंध में हलीम जाफर खां बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहते हैं[३६] कि "हम बचपन से ही यह सुनते चले आए हैं कि सितार की ईजाद अमीर खुसरो ने की। परन्तु अब यह कहना पड़े कि सितार का अमीर खुसरो से कोई ताल्लुक ही नहीं था, तो ऐसा कहने के लिए तथा मानने के लिए मन गवाही नहीं देता। इससे एकदम दिल को ठेस सी लगती है। ये विचार यह भी स्पष्ट करते हैं कि क्रमिक रूप से अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक कहने के कारण अब उसको न मानना ठीक प्रतीत नहीं होता, इसलिए सभी संगीतशास्त्री अमीर खुसरो को किसी न किसी प्रकार सितार से जोड़ने का प्रयास करते हैं। इसी संबंध में जो संगीतशास्त्री सितार की उत्पत्ति दक्षिणी वीणा से बताते हैं उनमें से गंगाधर राव तैलंकर अपने मत को व्यक्त करते हुए कहते

हैं[४०] कि `सितार के जन्मदाता खुसरो ही हैं, उन्हें दक्षिण की वीणा अच्छी नहीं लगी उसके स्थान पर खुसरो ने तीन तारों का प्रयोग किया तथा परदे लगाकर सितार का प्रचार किया। तीन तार होने के कारण उसे फारसी नाम सहतार दिया। धीरे-धीरे यही सहतार सितार हो गया तथा उसमें तारों की संख्या सात हो गयी।` इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लक्ष्मीनारायण गर्ग भी दक्षिणी वीणा में परिवर्तन से सितार की उत्पत्ति मानते हैं।[४१] इनके मतानुसार `अमीर खुसरो ने दक्षिणी वीणा में परिवर्तन करके चार की जगह तीन तार लगाए तथा तारों का क्रम उल्टा करके चल परदे लगाए। इससे यह वीणा की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गया। इस वाद्य में तीन तार होने से खुसरो ने उसका नाम सेहतार रख दिया। आगे चलकर इस तीन तार वाले वाद्य का रूप बदलते-बदलते आज सहतार के रूप में हमारे सामने है। इसमें तारों की संख्या बढ़कर सात हो गयी।`

परन्तु इस प्रकार के विचार पूर्णत: कल्पना पर आधारित हैं एवं उनमें सत्यता का अभाव है। सितार की उत्पत्ति को अमीर खुसरो के साथ जोड़ने की रीति का पालन करते हुए अनेक विद्वान ऐसे भी है जो मोहम्मद करम इमाम के द्वारा बताए `सितार के आविष्कारक अमीर खुसरो` थे, इस तथ्य की तो पुनरावृत्ति करते हैं, परन्तु बीन के स्थान पर उसे त्रितंत्री वीणा से संबंधित करने का असफल प्रयास करते प्रतीत होते हैं।

सितार की उत्पत्ति त्रितंत्री वीणा से बताते हुए एस० कृष्णास्वामी कहते हैं[४२] कि इसका आविष्कार अमीर खुसरो ने किया जो कि तेरहवीं शताब्दी में खिलजी व तुगलक दरबार का बहुत बड़ा संगीतकार व विद्वान था। सितार का नाम पर्शियन सहतार, जिसका अर्थ है `तीन तार` से पड़ा। क्योंकि सबसे पहले सितार में भी तीन तार होते थे। पुराने लेखों में कई तीन तारों वाली वीणाओं के नाम जैसे --

त्रितंत्री, त्रिनारी, त्रिपरी, त्रिशती तथा त्रिचरी आदि का उल्लेख है। ऐसा हो सकता है कि अमीर खुसरो ने इनमें से किसी वीणा को सुधारते-सुधारते अचानक सितार का आविष्कार कर डाला। उन्होंने अपने विचार निम्न शब्दों में व्यक्त किए हैं -- "In ancient treatise we come across various names of Veena having only three strings, Tritantri, Trinari, Tripari, Trishavi, Trichari, and so on. It is possible that Amir Khusrau tried to improve upon one of the Veenas then in vogue and ended up by inventing Sitar".

इसी प्रकार वासदेव शास्त्री भी सितार की उत्पत्ति त्रितंत्री वीणा के आधार पर बताते हुए कहते हैं कि 'सितार भारतीय त्रितंत्री वीणा का भेद है तथा इसके नाम व रूप की कल्पना अमीर खुसरो ने की थी।'[४३]

जिस प्रकार उपर्युक्त दोनों विद्वान सितार की उत्पत्ति त्रितंत्री वीणा से तथा अमीर खुसरो द्वारा मानते हैं, उसी प्रकार पं० रविशंकर भी अमीर खुसरो को सितार से निम्न प्रकार संलग्न करते हैं[४४] :-- "He (Amir Khusrau) was also a modifier of many instruments to which he affixed Persian names. For example he modified the 'frets' on the old Parivadani or Tritantri Veena, which means "Three Stringed Veena", in Sanskrit. He renamed it 'Sahtar' which literally means the same thing in Persian. Today of course this is known as 'Sitar' and again.....37. "Many scholars believed that the 'Sitar(' was in existance long before Amir Khusrau's time in diverse shapes in different regions of India. It was variously called 'Tri tantri Veena'(Sanskrit meaning three stringed)'Chitra Veena (Seven Stringed) and Parivadani but it is undeniable fact that Amir Khusrau did make some alterations and gave the instrument a new name'Sehtar'(Persian name for three stringed)".

उपर्युक्त उल्लेखों में सभी संगीत विद्वान सितार की उत्पत्ति त्रितंत्री वीणा से बता रहे हैं तथा सितार का आविष्कारक अमीर खुसरो को मानते हैं, परन्तु इनसे अगर यह पूछा जाए कि इस प्रकार का उल्लेख उन्हें कहां से प्राप्त हुआ ? इस विषय पर यह

मौन हो जाते हैं अथवा सारहीन एवं तथ्यहीन विचार प्रस्तुत करते हैं (जैसाकि एक उच्च कोटि के कलाकार से साक्षात्कार में पूछने पर महसूस किया गया। उनका यहां नाम देना, उनके यशस्वी एवं कीर्तिमान स्तर को दाग लगाना ही होगा) जबकि त्रितंत्री वीणा का जो उल्लेख प्राप्त होता है, उसके अनुसार त्रितंत्री वीणा में न परदे थे और न ही सितार जैसी आकृति। परन्तु यहां यह अवश्य कहना होगा कि इतने उच्चकोटि के कलाकारों द्वारा निरर्थक विचार प्रस्तुत करना कदापि शोभायमान नहीं होता।

श्री ओ० गोस्वामी अपने एक अन्य विवरण में सितार की त्रितंत्री वीणा से आविष्कृति बताते हुए कहते हैं [20] कि 'त्रितंत्री से ते-तारा, तेतार फिर सहतार अथवा सितार बना। प्राचीन संगीत साहित्य में तीन तार वाली एक अन्य वीणा 'त्रितंत्री वीणा' के संदर्भ प्राप्त होते हैं। संभवत: अमीर खुसरो ने फारसी शब्द 'सेह' तथा जनसाधारण की बोलू भाषा में प्रचलित शब्द 'ते' जिसका अर्थ तीन होता है, में समानता पाकर 'तेतार' (तीन तारों वाला वाद्य) को ही 'सेहतार' कहकर पुकारा है' यथा --

....but the ancient music literature refers to a type of Veena called Tritantrika, the three wired Veena. The Persian word for three is 'Seh' and Khusrau must have found some similarity between the vulgarized 'Te' meaning 'three' and the Persian 'Seh' and called the Instrument 'Sehtar' instead of 'Te-tara'.

इसी श्रेणी के एक अन्य मतावलम्बी के अनुसार भिन्न-भिन्न समय के गुणियों ने इस यंत्र में अपनी रुचि के अनुसार कुछ न कुछ परिवर्तन किया और वादनोपयोगी बहु-विध रचनाओं की रचना कर संगीत प्रेमियों का महान उपकार किया है। ऐसे नर श्रेष्ठों को ही सितार के नायक व आदिपुरुष कहना चाहिये। यह आगे अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं कि, 'सर्वप्रथम तेरहवीं शताब्दी में हज़रत अमीर खुसरो ने ही इस यंत्र (त्रितंत्री वीणा) में कुछ परिवर्तन किया, संगीत प्रेमियों ने इन्हें बहुत आदर दिया क्योंकि इनके नियम बहुत सरल एवं अल्प आयास साध्य थे, परन्तु उस समय में प्रचलित चीजों का

वर्णन देना कठिन है, क्योंकि इन बीजों की स्वरलिपि दुष्प्राप्य है । इसके पश्चात् प्राय: दो सौ वर्ष पर्यन्त भारतीय संगीत मुख्यत: त्रिंत्री वीणा में जिसे अमीर खुसरो 'सहतारा आल' कहा करते थे, कुछ भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि प्राचीन त्रिंत्री एवं सहतारा आला एक ही वाद्य यंत्र है अतएव आधुनिक सितार ही प्राचीन वीणा का रूपान्तर मात्र है, ऐसा कहना अनुचित न होगा, जिसका कारण भारत में विदेशी आक्रमण एवं संघर्ष है ।

इस प्रकार श्री बन्दोपाध्याय यह तो स्वीकार करते हैं कि सितार भारत में विदेशी आक्रमणों का परिणाम है, परन्तु सितार पर विदेश का कोई असर पड़ा इस विषय पर यह मौन है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह अज्ञानतावश ही सितार को विदेशी प्रभाव से प्रभावित न कहकर भारतीय त्रिंत्री वीणा का रूपान्तर मानते हैं ।

अतिया बेगम अपने लेख में सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखती हैं[४६] कि --
"..... and defeated in a contest the musician of the South, Nayak Gopal, who had come to Delhi with a view to challengethe musician of the Court. Amir Khusrau is reported to have given the name 'Sitar' to the Tritantri Veena of the Classic days".

उपर्युक्त अनेकानेक विद्वान संगीतशास्त्रियों ने ऐतिहासिक जिज्ञासा के अभाव में बिना अनुसंधान किए सितार को अमीर खुसरो से जोड़ दिया है जबकि इनके उल्लेखों में कहीं भी कोई तर्कसम्मत प्रमाण नहीं मिलता, केवल जनश्रुति ही इसका आधार है । आज यह सिद्ध हो चुका है कि सितार का अमीर खुसरो से कोई सम्बन्ध ही नहीं था । क्योंकि अमीर खुसरो पर यह उनके द्वारा लिखी पुस्तकों में कहीं भी सितार या सहतार का नाम अथवा रूप के बारे में नहीं लिखा है ।[४७-५४]

इस प्रकार अमीर खुसरो द्वारा रचित उपर्युक्त किसी भी पुस्तक में सितार का उल्लेख न होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरो ने नहीं किया। अमीर खुसरो का ही समकालिक प्रसिद्ध इतिहासकार बर्नी हुआ है, बर्नी ने उस काल के दरबारी संगीत का विस्तृत वर्णन किया है, जिसमें कई कलाकारों एवं वाद्यों का उल्लेख है परन्तु सितार का कहीं उल्लेख नहीं है। अमीर खुसरो के बाद की लिखी अनेक मुगलकालीन पुस्तकें यथा 'आइने अकबरी' जो कि अबुल फज़ल द्वारा लिखी गयी है, 'तुज़्के जहांगीरी' जो कि जहांगीर द्वारा लिखी गयी है, इन्में कहीं भी सितार का ज़िक्र नहीं किया गया है जबकि अन्य संगीत से संबंधित चर्चा काफी विस्तार से की गई है। सन् १६७५ ई० में मिर्जा खां द्वारा लिखी पुस्तक 'तुहफतुल हिन्द' में भी तत् वाद्यों के वर्णन में कानून, तंबूर आदि का वर्णन है परन्तु सितार का नाम भी नहीं आया है।[५५] इसी प्रकार 'मअरेफतुल अरवाह' जो कि सत्रहवीं शताब्दी में लिखी गई पुस्तक है, इसमें जंत्र का वर्णन है परन्तु सितार का कोई उल्लेख नहीं है।[५६] औरंगज़ेब के समकालिक फकीरुल्लाह द्वारा लिखा 'राग दर्पण' नामक ग्रन्थ में भी सितार के विषय में कुछ नहीं लिखा है[५७] जबकि फकीरुल्लाह एक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले लेखक थे। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में सितार का नाम अथवा उसका अमीर खुसरो के साथ सम्बन्ध का कोई वर्णन नहीं है।

सितार के साथ अमीर खुसरो के सम्बन्ध को असंगत मानते हुए आचार्य बृहस्पति एक पाकिस्तानी विचारक श्री रशीद मलिक के विचार प्रस्तुत करते हैं जो वास्तव में तर्कसंगत प्रतीत होते हैं।[५८] इनके अनुसार 'खुसरो केवल ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे। हिन्दुस्तानी संगीत में न तो उन्होंने कोई उल्लेखनीय कार्य किया, न ही आविष्कार। ऐतिहासिक जिज्ञासा के अभाव और अन्वेषण सम्बन्धी निकम्मेपन ने अनेक वस्तुओं को

अमीर खुसरो के साथ जोड़ दिया और समय-समय पर उनके तथाकथित आविष्कारों में वृद्धि होती गयी।' रशीद के अनुसार, 'उस युग की नीतियों की दृष्टि से यह आवश्यक था और मुसलमानों को एक ऐसे मर्दे कामिल की आवश्यकता थी जिसके नाम के साथ ऐसी किंवदन्तियों को नत्थी करके यहां के संगीत से आत्मीयता और शासक जाति की हैसियत से मुसलमान अपने जातीय गर्व का पहलू निकाल सकते।' रशीद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि एक विशिष्ट वर्ग के शासक जाति के मिथ्या गौरव को प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक कपोलकल्पनाओं की सृष्टि की और उन्हें खुसरो के नाम से जानबूझ कर चिपका दिया। इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए रशीद मलिक कहते हैं, ' क्योंकि अन्वेषणा और गवेषणा की भावना समाप्त हो चुकी थी, मानसिक निकम्मेपन ने नवीन कार्य करने के सभी स्रोत सुखा दिये थे, अत: हम सरलतम मार्ग पर चल निकले। अनुसंधान, जिज्ञासा और परिश्रम साध्य खोज की अपेक्षा हमारे लिए यह सरलतम था कि जिस वस्तु के उद्भव अथवा विकास से हमारा परिचय न हो, जिसके इतिहास से हम परिचित न हों, उसे किसी प्रभावशाली व्यक्ति के साथ नत्थी करते जायें। चिन्तनविषय निष्क्रियता और मानसिक निकम्मेपन का इसकी अपेक्षा बुरा उदाहरण हमें इतिहास में कदाचित ही कहीं मिले।' रशीद का कथन है कि ' अमीर खुसरो संगीत की विभिन्न बंदिशों के 'अशआर' लिखते थे, इन बंदिशों में कौल, ग़ज़ल, तराना, नक्श, नशीद और वसीत सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त समस्त निष्कर्ष सरासर प्रक्षिप्त हैं, अटकलों या अनुमानों पर आश्रित हैं।'

इस प्रकार रशीद मलिक भी सितार के साथ अमीर खुसरो को जोड़ने का कारण केवल विशिष्ट वर्ग के शासक जाति के मिथ्या गौरव को प्रतिष्ठित करना बताते हैं। इसलिये अनेक कपोलकल्पनाओं की सृष्टि करके उन्हें अमीर खुसरो के साथ जोड़ दिया गया जबकि अमीर खुसरो का सितार के साथ कोई ताल्लुक नहीं था। और इसी प्रकार के

अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जो कि अमीर खुसरो के साथ सितार का कोई सम्बन्ध न मानते हुए भी गलत कही गयी बात की पुनरावृत्ति करते जाते हैं। इस संबंध में उर्दू में लिखी गयी एक पुस्तक जो रशीद मलिक द्वारा लिखी गयी है, बहुत ही अच्छा प्रकाश डालती है।[५६] इस पुस्तक में लिखा है कि, `नए आविष्कारों से पता चलता है कि खुसरो का सितार की ईज़ाद से कोई वास्ता न था। डा० रबीब हुसैन का भी यह ख्याल है कि अमीर खुसरो ने सितार की ईजाद नहीं की। चन्द्रवेदी, जिन्होंने `ईजन` नामक पुस्तक लिखी है, विख्यात संगीतज्ञ व पढ़े-लिखे आदमी हैं, वह भी अपनी खोज के आधार पर इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि हमें इस काम की सनद कहीं नहीं मिलती कि सितार अमीर खुसरो की ईजाद है।`

`अमीर खुसरो इजाज़े खुसरवी के दूसरे रिसाले में अपने जमाने के संगीतज्ञों का ज़िक्र करते हैं तथा अपने समय के वाद्यों की संख्या भी देते हैं जो २६ है परन्तु सितार का ज़िक्र नहीं है। अगर सितार अमीर खुसरो की ईजाद होती तो कहीं न कहीं उसका ज़िक्र ज़रूर मिलता। उस जमाने के कवि अपने कारनामों का ज़िक्र अपनी कविताओं में करते थे। इस बात में अमीर खुसरो भी अपने किसी साथी से पीछे नहीं रहे, लेकिन सितार के बारे में इनकी खामोशी इस बात की दलील है कि उनका इसकी ईज़ाद से कोई वास्ता न था।`

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से इस तथ्य की पूर्णरूपेण पुष्टि हो जाती है कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरो ने नहीं किया। परन्तु रशीद मलिक अपनी पुस्तक में आगे यह बताते हैं कि, `सितार अमीर खुसरो से कहीं पहले ईज़ाद हो चुका था और उनके जमाने से आइने अकबरी तक हमें इसका कोई सुराग नहीं मिलता।`

लेखक यहां कुछ विपरीत विचार प्रस्तुत करते प्रतीत हो रहे हैं। एक तरफ वह कह रहे हैं कि सितार अमीर खुसरो से कहीं पहले ईज़ाद हो चुका था, वहां दूसरी

तरफ कहते हैं कि उनके जमाने से आइने अकबरी तक सितार का कोई सुराग ही नहीं मिलता। अगर यह सत्य है कि सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो से पहले हो गयी थी तो भारतीय साहित्य में कहीं न कहीं इसका विवरण होना अनिर्वचनीय है। इस उलझन को हम अगले भाग में पूर्णत: सुलझाने का प्रयास करेंगे।

उपरोक्त सभी विवरणों के उल्लेख के उपरान्त सितार का अमीर खुसरो से सम्बन्ध सोचना भी अन्याय है। इस असत्य कथन का प्रचार जो कि मोहम्मद करम इमाम द्वारा प्रारम्भ किया गया था, अब इतने तर्कसंगत विचारों के उल्लेख के उपरान्त बन्द हो जाना चाहिये।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस प्रकार सितार को बीन के समान बनाने का श्रेय अमीर खुसरो को देने की प्रथा का उन्नयन मोहम्मद करम इमाम के द्वारा हुआ उसी प्रकार त्रिंत्री वीणा से जोड़कर सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो द्वारा बताने के मिथ्या तथ्य का प्रचार किसने किया ? इस सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस विचार को सर्वप्रथम मान्यता देने वाले विद्वान संगीतशास्त्री श्री एस०एम० टैगोर थे। इनकी पुस्तक 'यंत्र क्षेत्र दीपिका' सन् १८७० ई० में बंगाली भाषा में लिखी गयी थी। इस पुस्तक में एस०एम० टैगोर ने 'त्रिंत्री वीणा को ही सितार माना है तथा बताया है कि, 'त्रिंत्री वीणा को ही अमीर खुसरो ने सेहतार कहना प्रारम्भ किया।'[६०] इस पुस्तक में सितार से संबंधित सभी अंगादि के नामों का वर्णन संस्कृत में किया है। इससे उन्होंने सितार के अंगों के नामों को उर्दू की जगह संस्कृत भाषा में प्रचलित करने का पूर्ण प्रयास किया है। इस पुस्तक के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि लेखक भारतीयता एवं धार्मिकता की भावनाओं से लिप्त है, इसी कारण ही सितार व त्रिंत्री वीणा में नाम की साम्यता पाकर वह इस कथ्य का प्रचार कर बैठे हैं। अन्यथा इसमें किसी प्रकार के तर्कसंगत कथ्य को स्थान नहीं है। परन्तु अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाय तो यह भी सोचने पर बाध्य हो जाना पड़ता है कि मौखिक तथा लिखित उल्लेखों

में सितार शब्द अमीर खुसरो से किस प्रकार जुड़ गया ? इस विषय पर कुछ प्रकाश अगले भाग में डालेंगे ।

आधुनिक समय में अगर देखा जाए तो कुछ विद्वान अमीर खुसरो को सितार के आविष्कार का श्रेय न देते हुए प्रतीत होते हैं । यथा श्री भावतशरण शर्मा लिखते हैं[६१] कि, `लगभग ६० प्रकार की वीणाओं के वर्णन आज भी मिलते हैं । इन्हीं में तीन तारों वाली त्रितंत्री तथा सौ तारों वाली शततंत्री वीणा का भी उल्लेख है । संभव है किसी मुसलमान कलाकार ने त्रितंत्री वीणा का नाम `सहतंतीर` या `सहतार` रख दिया होगा और सात तार होने पर वह सतार या सितारी कही जाने लगी । कुछ भी सही, सितार भारतीय वीणा का ही रूपान्तरण है, चाहे उसका आविष्कारक हिन्दू हो या मुसलमान । सितार को उत्तरी भारत में सरस्वती वीणा भी कहते हैं जो कि उपयुक्त है किन्तु सितार एक सरल एवं प्रचलित शब्द होने से शीघ्र ही नहीं बदला जा सकता ।`

इसी संबंध में इन्द्राणी चक्रवर्ती अपने शोधकार्य में इस प्रकार लिखती हैं[६२] ---

"Regarding the origion and development of Sitar, a majority of Scholars believe that the Sitar developed from Tritantri Veena".

उपर्युक्त विवरणों में भावतशरण शर्मा एवं इन्द्राणी चक्रवर्ती सितार की उत्पत्ति तो त्रितंत्री वीणा से बता रहे हैं, परन्तु त्रितंत्री वीणा सितार के रूप में कब व कैसे बदल गयी, इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला है ।

इस संदर्भ में लालमणि मिश्र ने अपनी शोध पुस्तक में सितार की उत्पत्ति से संबंधित काफी अच्छा उल्लेख किया है ।[६३] इनके अनुसार, `सितार में भारतीय वाद्य की सभी विशेषताएं हैं । इन्होंने सितार की तीन भारतीय विशेषताओं का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है । पहली विशेषता है घुड़च का चपटा होना । इस प्रकार के चपटे घुड़च की प्रथा भारत में अति प्राचीन काल से चली आ रही है । प्राचीन काल में इस चपटी घुड़च के लिए लोह अथवा ताम्रपत्रिका का प्रयोग होता था जो लगभग

'संगीत रत्नाकर' के काल तक रहा । इस प्रकार की घुड़च में आवश्यकतानुसार जवारी खोलना संभव नहीं था, इसलिए मध्यकाल में लोह तथा ताम्र पत्रिका के स्थान पर ऊंट की हड्डी अथवा हाथीदांत का प्रयोग होने लगा । इस परिवर्तन से वाद्य की झनकार में आशातीत सुधार हुआ । वाद्य में आवश्यकतानुसार जवारी की आवश्यकता द्वारा उसकी ध्वनि में गूंज तथा कर्णप्रियता की वृद्धि की जाने लगी । इस प्रकार घुड़च की जवारी की यह व्यवस्था विश्व के अन्य किसी वाद्य में नहीं पायी जाती । यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि भारतीय वीणाओं में घुड़च की इस प्रकार की व्यवस्था केवल उन्हीं में देखी जाती है जिन्हें मिज़राब से बजाया जाता है । गज से बजने वाली तंत्री वाद्य जैसे सारंगी, रावण हस्त, इसराज आदि में घुड़च की व्यवस्था भिन्न प्रकार की होती है ।

दूसरी व्यवस्था है परदों की । भारतीय वीणाओं में परदे लगाने की जिस प्रकार व्यवस्था होती है, वैसी व्यवस्था अन्य देशों में नहीं पायी जाती ।

तीसरी विशेषता है चिकारी के तारों की जो वादन के समय केवल छेड़े जाते हैं तथा जिनसे षड्ज की ध्वनि सदा ध्वनित होती रहती है । चिकारी का प्रयोग किन्नरी वीणा की उत्पत्ति काल से होने लगा था जो बारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक परिपुष्ट हो गया ।'

यह सितार को भारतीय विशेषताओं से युक्त बताते हुए कहते हैं कि, 'अगर यह ईरानी वाद्य है तो समुद्रगुप्त के समय के सहतार (त्रितंत्री) को भी अरबवासियों ने सहतार मानकर भूरि-भूरि प्रशंसा की है अत: भारतीय संगीत में भी सहतार प्राचीन वाद्य माना जाना चाहिये । न तो यह ईरान-फारस से आया हुआ एक विशुद्ध विदेशी वाद्य है तथा न ही यह सप्ततार, सप्ततंत्री तथा चित्रावीणा का अपभ्रंश है । वस्तुत: सितार शब्द फारसी सहतार का पर्यायवाची है, यह तर्कसम्मत है ।'

अपने उक्त विचारों को प्रमाणित करने के लिए मिश्र जी अपनी शोध पुस्तक में त्रितंत्री वीणा से ही सितार का सम्बन्ध बतलाते हैं। उनके अनुसार सितार के वर्तमान स्वरूप का विकास तेरहवीं अथवा चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक भारत में एकतंत्री तथा किन्नरी वीणा प्रचार में थी। एकतंत्री सारिका रहित तथा किन्नरी सारिका युक्त थी। किन्नरी वीणा का रुद्रवीणा के रूप में प्रचार तेरहवीं शताब्दी के आसपास ही हुआ। शारंगदेव ने रत्नाकर में जिस त्रितंत्री वीणा का वर्णन किया है, उसी को कल्लिनाथ ने रत्नाकर की टीका करते समय यंत्र भी कहा है।

मिश्र जी ने सितार के भारतीय अवयवों का बहुत ही सही उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने सितार का मुख्य भाग जो कि किसी प्राचीन भारतीय वीणा से मेल नहीं खाता, उसके विषय में कुछ न कहकर त्रितंत्री वीणा से ही सितार की उत्पत्ति बताई है।

लालमणि मिश्र के समान ही अपने विचारों को व्यक्त करते हुए देवव्रत चौधरी लिखते हैं [६४] -- "However, Some of the applied musicologists have made considerable research on this controversial subject and came to conclusion that it was neither Amir Khusrau nor any particular Musician who invented this instrument; Veena to Jantar and from Jantar it has taken its shape as Sitar of present day".

उपर्युक्त दोनों कथनों में सितार की उत्पत्ति का क्रम त्रितंत्री से जंत्र तथा जंत्र से सितार बताया गया है। इस क्रम के लिए तीन मुख्य कल्पनाएं की गयी हैं। प्रथम कि शारंगदेव की त्रितंत्री तथा कल्लिनाथ के यंत्र जिसमें कि १०० साल के अन्तराल में दो तारों की वृद्धि हुई है, दोनों एक ही वाद्य हैं -- 'तंत्र त्रितंत्री कैव लोके जंत्र शब्देनोच्यते।' द्वितीय आइने अकबरी के यंत्र के वर्णन से उसे सितार की संज्ञा देने की

कोशिश की गयी है । जैसे कि यंत्र में सोलह परदे होते थे (जो शुरू के सितार में आम बात थी) । यंत्र में कटे हुए अर्द्धकार तूंबे लगे हुए हैं । तृतीय यह है कि बंगाल में सितार को यंत्र भी कहा जाता है जैसे यंत्र - चौत्र दीपिका । परन्तु अगर ध्यान से देखा जाय तो उपर्युक्त तीनों कल्पनाओं में सत्यतता का अभाव है । आइने अकबरी में जंत्र के बारे में निम्न विचार व्यक्त किए गए हैं [६५] :--

"The Yantra is formed of a hollow neck of wood a yard in length, at each end of which are attacked the halves of two gourds. Above the neck are sixteen frets over which are string five steel wires fastened securely at both ends. The low and high notes and their variations are produced by the disposition of the frets"

इस प्रकार आइने अकबरी में जंत्र को स्पष्ट रूप से बीन के समान बताया गया है तथा जंत्र एवं बीन में केवल तारों का ही अंतर बताया है । इसलिए जंत्र के अर्द्धकार तूंबों को सितार के तूंबों की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि इसमें तारों को डांड के दोनों तरफ कसा गया है जो कि इसे बाकी वीणाओं के समान ही बताता है । इससे यह स्पष्ट होता है कि इसमें सितार की तरह तबली भी नहीं लगी है । इस जंत्र के समान आज भी राजस्थान में जंत्र नामक वाद्य मिलता है जो रुद्रवीणा से काफी मिलता जुलता है । बी०सी० देव इसी जंत्र वाद्य की किन्नरी वीणा से तुलना करते हैं । [६६]

आइने अकबरी की संक्षिप्त टिप्पणी में जंत्र को किसी भी तत् वाद्य के लिए प्रयोग में आने वाला शब्द बताया गया है । इसी प्रकार बंगाल के साहित्य में यंत्र अथवा जंत्र किसी भी वाद्य के साथ लगा दिया जाता था । यथा किन्नरी यंत्र, सितार यंत्र इत्यादि। अत: नाम की साम्यता को मानना भी अनुचित होगा ।

जो विद्वान सितार की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार की वीणाओं से बताते हैं चाहे वह सप्ततंत्री हो, या चित्रा, त्रितंत्री हो या दक्षिणी वीणा, अगर वह विद्वान वीणा व सितार की मूल आकृति को देखें तो यह सहज ही स्पष्ट हो जाएगा कि वीणा

से सितार की उत्पत्ति की कल्पना भी निराधार है। इस संदर्भ में वाद्यों के वर्गीकरण पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है। तत् वाद्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है[६७] -- (१) स्टिक जिथर, (२) ल्यूट।

(१) स्टिक जिथर

यह वे वाद्य हैं जिनमें डांड के नीचे तूंबा होता है जैसे कि जंत्र, किन्नरी, रुद्र-वीणा (परदे वाली), विचित्र वीणा (परदे रहित)।

(२) ल्यूट

यह वे वाद्य हैं जिनमें तूंबे से निकलती हुई गर्दन व डांड होती है। जैसे कि कच्छपी वीणा, रबाब, सरोद, सितार, सरस्वती वीणा (जो अब दक्षिण में है)।

त्रितंत्री वीणा एवं सितार में केवल अक्षर साम्य ही है। प्रमाणों के आधार पर यह केवल भाष्य रिश्ता ही नज़र आता है। बनावट के आधार पर इनमें कोई मेल नहीं है क्योंकि एक स्टिक जिथर से ल्यूट की कल्पना ही असंभव है।[६८]

उपर्युक्त वर्णन से सितार को वीणा से उत्पन्न मानने के विचार को असंगत मानना ही पड़ेगा। क्योंकि सितार वास्तव में एक ल्यूट वाद्य है जबकि वीणा एक स्टिक जिथर है। इस प्रकार एक स्टिक जिथर से, जिसमें तूंबा डांड में आंटो से लगा हुआ व उसके नीचे होता है, एक ल्यूट वाद्य, जिसमें तूंबे से डांड निकलती है, कैसे बन सकता है?

कुछ संगीतशास्त्री सितार की उत्पत्ति सरस्वती वीणा (जो कि एक ल्यूट है) से मानते हैं। यह अगर सितार की प्रारम्भिक आकृति को ध्यानपूर्वक देखें तो उन्हें अपना विचार स्वयं ही निराधार प्रतीत होगा। प्रारंभिक सितार में एक छोटा तूंबा व लम्बी एवं पतली डांड लगी होती थी, जिस पर तांत के परदे लगे हुए थे। अगर सितार सरस्वती वीणा से विकसित वाद्य होता तो उसके तूंबा व डांड को पतला बनाने का

कोई अर्थ नहीं निकलता है एवं न ही उसके वीणा के भांति लोहे के परदे के स्थान पर प्राचीन तांत के परदों को लगाने की ही विशेष आवश्यकता दिखाई पड़ती है। जबकि बाद में सितार की डांड भी चौड़ी की गई है तथा लोहे के परदे ही लगाए गए हैं।

इस प्रकार के अनेक तर्क-कुतर्कों को समक्ष रखकर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीणा से सितार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जो विद्वान यह मानते हैं कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरो ने किया है अथवा वीणा से हुआ है, यह उनकी बहुत बड़ी भूल है। संभवत: अधिकतर विद्वान भारतीयता की भावना से ओत-प्रोत होने के कारण ही सितार का संबंध वीणा से बिना किसी विचार किए जोड़ देते हैं। जबकि सितार की उत्पत्ति से संबंधित प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के तमाम मान्य उल्लेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि सितार की उत्पत्ति न ही किसी प्रकार की वीणा से हुई तथा न ही अमीर खुसरो सितार के आविष्कारक थे।

ग्रंथ एवं ग्रंथकारों की सूची

१. एस० कृष्णास्वामी, आपली संगीत वाद्ये, संगीत कला विहार, जुलाई १९६४, पृष्ठ २१६ (मराठी, स्वयं अनुवादित) ।

२. एस० कृष्णास्वामी, म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेन्ट्स आफ इंडिया, १९६५, पृष्ठ ३५-३६ ।

३. राजा फतेहसिंह वर्मा, राग प्रकाशिका, १८९९ ।

४. पं० जगदीशनारायण पाठक, सितार सिद्धान्त, १, सितम्बर, १९६७, पृष्ठ १-२ ।

५. वही, पृष्ठ ४-५ ।

६. विश्वम्भरनाथ भट्ट, सितार शिक्षा, १९६२, पृष्ठ ३-५ ।

७. वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, दि वीना पद्धति आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक, जर्नल आफ म्यूज़िक एकेडमी, मद्रास, २८, १९५३, पृष्ठ ७२ ।

८. कु० इन्द्रजीत कौर, सारिका युक्त तंतु वाद्यों का विकास, शोधकार्य, लखनऊ, १९७९ ।

९. उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहास, १९५७, पृष्ठ १६२-१६४ ।

१०. लालमणि मिश्र, तंत्रीनाद भाग १, १९७९, पृष्ठ १९ ।

११. राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता, धातु के सिक्के छठी से दसवीं शताब्दी ।

१२. स्वामी प्रज्ञानंद, हिस्टोरीकल डिविलोपमेन्ट आफ इंडियन म्यूज़िक, १९७३, पृष्ठ ४६८ ।

१३. भरत, नाट्यशास्त्र, गायकवाड क्रम १४५, २९ वां अध्याय ।

१४. अभिनव गुप्त, नाट्यशास्त्र ।

१५. विलायत खां के घराने वाले, बुद्धादित्य मुखर्जी आदि ६ तार वाले सितार को बजाते हैं ।

१६. बीसवीं शताब्दी के आरंभ होने से पूर्व सेनिया घराने वाले तथा जयपुर बाज के बजाने वाले ५ तारों का ही प्रयोग करते थे ।

१७. शाह आलम, नादिरात शाही, १[illegible] पृष्ठ ८८ ।

१८. ये विचार एस०एम० टैगोर के हैं ।

१९. जी०एच० फारमर, 'स्टडीज़ इन औरियेंटल म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेन्ट्स, १९३९,पृ० ९ ।

२०. ओ० गोस्वामी, 'दि स्टोरी आफ इंडियन म्यूज़िक', १९५७, पृष्ठ ३०० ।

२१. उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहासखिलजी युग में संगीत ।

२२. व्यास, संगीत पत्रिका, मई १९६८, पृष्ठ ४ ।

२३. रहीस खाँ, साक्षात्कार, संगीत पत्रिका, अगस्त १९८१, पृष्ठ ३१ ।

२४. डा० श्रीराम शर्मा, खुसरो कृत खालिकबारी, पृष्ठ ८ ।

२५. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, हमारे प्रिय संगीतज्ञ, पृष्ठ ६-७ ।

२५. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, वाद्य शास्त्र, १९५६, पृष्ठ १०८ ।

२६. कु० इन्द्रजीत कौर, सारिकायुक्त तंतु वाद्यों का विकास, शोधकार्य, १९७९ ।

२७. रशीद मलिक, हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसीकी, १९७५, पृष्ठ १३४ (उर्दू, स्वयं अनुवादित) ।

२८. भैरोंप्रसाद श्रीवास्तव, संगीत कला विहार पत्रिका, सितम्बर १९६८, पृष्ठ ३३९-३४२, पृष्ठ ३४६ ।

२९. राजेन्द्रप्रसाद त्रिवारी ने संगीत पत्रिका, मई १९६१ के संस्करण में अपने लेख में डा० सैयद राग़िब हुसैन द्वारा रचित 'म्यूज़िक एण्ड अमीर खुसरो' का उल्लेख किया है ।

३०. एस०एम० टैगोर की पुस्तक 'हिन्दू म्यूज़िक', भाग-१, में केप्टेन एन० आगस्ट्स विलर्ड का पृष्ठ ९८ पर एक लेख, १९६५ और मोहम्मद करम इमाम कृत 'मादन-अल-मूसीकी, १९२५, पृष्ठ १५७ (उर्दू, स्वयं अनुवादित) ।

३१. मोहम्मद करम इमाम, मादन-अल-मूसीकी, १९२५, पृष्ठ २२,२३ (उर्दू,स्वयं अनुवादित)।

३२. वही, पृष्ठ २७ ।

३३. वही, पृष्ठ ५८ ।

३४. वही, पृष्ठ २२७ ।

३५. अरविन्द पारिख, संगीत कला विहार पत्रिका, जुलाई १९५७, पृष्ठ २७९ (मराठी, स्वयं अनुवादित) ।

३६. चैतन्य देसाई, संगीत कला विहार पत्रिका, मई १९६० पृष्ठ १४३ ।

३७. पं० रविशंकर, माई म्यूज़िक : माई लाइफ, पृष्ठ ४६ ।

३८. एस० कृष्णास्वामी, म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स आफ इंडिया, १९७१, पृष्ठ २० ।

३९. उस्ताद हलीम जाफर खां, साक्षात्कार, दिसम्बर १९८२, जुलाई १९८४, बोम्बे, नफीस मंजिल ।

४०. गंगाधर राव तैलंक, संगीत कला विहार पत्रिका, सितम्बर १९८१, पृष्ठ ३५२-३५५ ।

४१. लक्ष्मीनारायण गर्ग, हमारे संगीत रत्न, पृष्ठ १०४ ।

४२. एस० कृष्णास्वामी, म्यूज़िक इंस्ट्रूमेंट्स आफ इंडिया, १९७१, पृष्ठ ३० ।

४३. वासुदेव शास्त्री, संगीत शास्त्र, १९६८, पृष्ठ २६६ ।

४४. पं० रविशंकर, म्यूज़िक मेमोरी, पृष्ठ ९ ।

४५. श्रीपद बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९६७, पृष्ठ ८८ ।

४६. अतिया बेगम, संगीत आफ इंडिया, १९४२, पृष्ठ ३८ ।

४७. अमीर खुसरो, घरतअल-कमाल एवं निहायत-अल-कमाल ।

४८. अमीर खुसरो, इंडिया एज सीन बाय अमीर खुसरो इन १३१८ ए०डी०, अनुवाद : आर० नाथ और फैयाज़ ग्वालियरी ।

४९. प्रो० मुहम्मद हबीब का संग्रह, पोलेटिक्स एण्ड सोसायटी ड्यूरिंग दि अर्ली मेडिएवल पीरियड, वोल्यूम १, संपादक : के० निज़्मी ।

५०. (हज़रत) अमीर खुसरो, खाज़ा इनुल - - - हज़रत अमीर खुसरो आफ दिल्ली ।

५१. अमीर खुसरु, तोहफत-अस-सफार, वस्त-अल-हयात और नाखीजा बक्युयाज़ ।

५२. मोहम्मद हबीब, अमीर खुसरो, बायोग्राफी ।

५३. डी०बी० तारापुरवाला सन्स एण्ड कम्पनी, हज़रत अमीर खुसरो आफ दिल्ली ।

५४. मोहम्मद वहीद मिर्जा, दि लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो, शोधकार्य, पी-एच०डी० उपाधि के लिये, लन्दन यूनिवर्सिटी, १९२९ ।

५५. मिर्जा खां, तुहफतुल हिन्द, १९७५ ।

५६. शिहाब सरमदी साहब, अलीगढ़ के सहयोग से प्राप्त ।

५७. फकीरुल्लाह (नवाब सैफ़ खां कश्मीर गवर्नर), रागदर्पण, १६६६ ।

५८. आचार्य बृहस्पति, संगीत पत्रिका, अप्रेल १९७७, पृष्ठ ५ ।

५९. रशीद मलिक, हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसीक़ी, १९७५, पृष्ठ १४५-१४७ (उर्दू भाषा से स्वयं अनुवादित) ।

६०. एस०एम० टैगोर, यंत्र क्षेत्र दीपिका, १८७९, पृष्ठ ४ ।

६१. भगवतशरण शर्मा, सितार मालिका, सितम्बर १९५८, पृष्ठ १ ।

६२. इन्द्राणी चक्रवर्ती, स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, बनारस, १९७४ ।

६३. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, १९७३, पृष्ठ ५५-५६ ।

६४. देवव्रत चौधरी, सितार एण्ड इट्स टैकनिक्स, सितम्बर १९८१, पृष्ठ १३ ।

६५. अबुल फजुल, आइने अकबरी, १९४८, भाग ३, अनुवाद एच०एस० जारेट, पु० सर जदुनाथ सरकार ।

६६. बी०सी० देव, म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेण्ट्स आफ इंडिया, १९७८, पृष्ठ १६० ।

६७. कर्ट सैचस, दि हिस्ट्री आफ म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स, १९४०, पृष्ठ २३१, ४६३-४६४ ।

६८. बी०सी० देव, भारतीय संस्कृति, भाग-२, १९८३, पृष्ठ ९४५ ।

51

(ख) सितार की उत्पत्ति पर्शिया से

सितार वाद्य जो कि वर्तमान समय में भारतवर्ष की एक अमूल्य निधि बनकर रह गया है, इसके विषय में केवल हिन्दुस्तानी ही नहीं, वरन् पाश्चात्य-विद्वान् भी यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि इस सर्वगुण सम्पन्न एवं मधुरिमा से लिप्त वाद्य का निर्माण कहां व किसने किया। परन्तु आज यह विषय इतना दुरूह हो गया है कि सहज ही इस विषय पर कुछ लिखना अथवा कहना सुशोभित नहीं होता। इस विषय की अनबूझ पहेली को सुलझाने के लिए प्राचीन से प्राचीन भारतीय साहित्य, पर्शियन साहित्य, शोधकार्य, चित्रकला एवं ऐतिहासिक विवेचनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना भी अनिर्वचनीय है।

प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि हर समय का साहित्य उस समय के शासक की मनोवृत्ति से प्रभावित होता है। उसमें कुछ सत्यता होती है तथा कुछ समकालिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर असत्य कथन को भी स्थान देना पड़ता है। अकबर के काल को 'संगीत का स्वर्ण युग' कहा जाता है तथा इस समय के अनेक ग्रन्थ यथा 'अबुलफजल कृत आइने अकबरी' आदि संगीत विषय से सम्बन्धित काफी अच्छी एवं विस्तृत जानकारी देते हैं जबकि औरंगजेब जो कि इसी पीढ़ी का था, परन्तु संगीत अपने धर्म के विरुद्ध होने के कारण उसका कथन था कि 'संगीत के जनाजे को इतना गहरा गाढ़ो कि पुनः पनप न पाए।' ऐसे शासकों के राज्य में संगीत से संबंधित तथ्यों का खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि पहले तो इनके राज्य में संगीत संबंधी साहित्य का सृजन हुआ ही नहीं और जो कुछ साहित्य था भी, वह नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार जो अल्प प्राचीन साहित्य उपलब्ध है, उसी के आधार पर कुछ प्रमाणित करना सर्वथा उचित प्रतीत नहीं होता।

इसके विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए विस्तृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है। विस्तृत दृष्टिकोण रखकर विभिन्न चित्रकारियों शिल्पकृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने की जरूरत है क्योंकि शोधकार्य के लिए किसी एक विषय अथवा वस्तु को आधार मानकर ही निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास एक बहुत बड़ी नासमझी है। यथा मात्र किंवदन्तियों के आधार पर शेख मोहम्मद गौस के आशीर्वाद से तानसेन का जन्म होना तथा स्वामी हरिदास को तानसेन का गुरु बताना एक निराधार मत का प्रतिपादन है क्योंकि मोहम्मद गौस (जन्म सन १५०२ ई०) तथा हरिदास (जन्म सन् १५२७) दोनों ही तानसेन (जन्म १४८३) से छोटे थे[1]। इसी प्रकार की अनेक मनगढ़न्त कहानियाँ आज के संगीतशास्त्रियों द्वारा भी गढ़ी गयी हैं जिनमें प्रामाणिकता का पूर्ण अभाव है।

इसी प्रकार अगर कोई चित्रकार है तो यह आवश्यक नहीं कि वह संगीतकार भी हो अथवा संगीत वाद्यों का ज्ञाता हो, अत: अगर एक कलाकार कोई संगीत वाद्य से सम्बन्धित कलाकृति बनाता है तो उसका कुछ तो आधार होता है। परन्तु कुछ कलाकार के मनोगत विचारों से भी उस कलाकृति का रूप कुछ बदल जाता है। पर यह संगीत के उस वाद्य से संबंधित अल्प जानकारी अवश्य दे सकती है।

उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में हम साहित्य, इतिहास, मूर्तिकला एवं चित्रकला से प्राप्त सामग्री के आधार पर कुछ न्यायिक एवं तर्कसंभव मतों को खोजने का प्रयास करेंगे।

सितार की उत्पत्ति के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख कै० विलर्ड ने एस०एम० टैगोर की पुस्तक 'हिन्दू म्यूज़िक' में सन् १८३४ ई० में लिखा है जो निम्न है[2]:--

"This is likewise a modern instrument invented by Amir Khusrau of Delhi. It resembles the last mentioned instrument(Tanpura) but is made a good deal smaller and has movable frets of Silver, brass or other material which was fastened with Catgut

or Silk. Seventeen frets are generally used as they are moveable, they answer every purpose required. The shifting of these to their proper places required a delicate ear.

This Instrument derives its name from 'Si'(Sih) signifying in Persian 'three' and 'tar', a string, as that number is 'Commonly' used. More modern performers have made several additions .....The wires arestruck with the forefinger of the right, to which is fitted a kind of plectrum, an instrument called mizrab, made of a piece of wire curiously twisted to facilitate the various movements of the finger."

उपर्युक्त उल्लेख पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि के० विलर्ड सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो से बता रहे हैं । परन्तु यह अमीर खुसरो किस समय के थे, यह नहीं बताया है जबकि भारतीय साहित्य पर दृष्टि डालने से चार खुसरो नामक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है :--

(१) खुसरो द्वितीय (तीसरी से सातवीं शताब्दी ए०डी०)

(२) अमीर खुसरो (तेरहवीं शताब्दी)

(३) खुसरो खां (सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी)

(४) मीर खुसरो (सत्रहवीं शताब्दी) ।

सर्वप्रथम जिस खुसरो का ज़िक्र मिलता है वह एक सोने के सिक्के पर बना चित्र है जिसमें तीसरी से सातवीं शताब्दी ए०डी० लिखा है[2]। यहां खुसरो-द्वितीय लिखा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इनसे पहले भी कोई खुसरो-प्रथम होंगे । परन्तु इनका कोई उल्लेख नहीं मिलता । इनकी संगीत के संबंध में कोई जानकारी थी, ऐसा भी कोई वर्णन नहीं मिलता है ।

द्वितीय उल्लेख अल्लाउद्दीन खिलजी के दरबारी अमीर खुसरो का मिलता है ।[3] यह इतिहासकार, कूटनीतिज्ञ, शासक, कवि एवं संगीतकार के रूप में इतिहास में वर्णित हैं । परन्तु सितार के आविष्कार का इस खुसरो के साथ भी कोई संबंध नहीं था, इसे

पीछे भाग (क) में पूर्णत: स्पष्ट किया जा चुका है ।

तृतीय खुसरो जिन्हें खुसरो खां के नाम से जाना जाता था, यह शाहजहां के समय का है, परन्तु इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह संगीत से संबंधित न होकर केवल राजनीति में ही प्रवीण था ।[५]

चौथा उल्लेख हमें खुसरो नामक व्यक्तियों में औरंगजेब के समय के मीर खुसरो का मिलता है परन्तु इनकी भी संगीत-प्रियता आदि के बारे में हमें इतिहास में कोई उल्लेख नहीं मिलता ।[६]

इस प्रकार इतिहास-सम्मत खुसरो में से केवल अल्लाउद्दीन खिलजी के समय के अमीर खुसरो के अलावा कोई भी संगीत से संबंधित नहीं था । यह पूर्णत: प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है । इसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि के० विलर्ड ने जिस अमीर खुसरो का ज़िक्र किया है, वह तेरहवीं शताब्दी का अल्लाउद्दीन के समय का ही अमीर खुसरो है जिसे कि के० विलर्ड के बाद लिखी मोहम्मद करम इमाम खां की पुस्तक मादन-अल-मूसीक़ी में भी अल्लाउद्दीन के समय का बताया गया है ।[७]

कुछ अन्य विदेशी लेखक जिन्होंने भारतीय संगीत के विषय में बहुत अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, उनमें हरबर्ट ए० पोपले की एक पुस्तक 'द म्यूज़िक आफ इंडिया' भी है[८]। इसमें पोपले ने कुछ वाद्यों का नामोल्लेख किया है । सितार का प्रचार होने के पश्चात जिसने भी उत्तर भारत के संगीत वाद्यों के संबंध में कुछ लिखा, सितार का उल्लेख अवश्य किया है । पोपले ने भी सितार का आविष्कारक अमीर खुसरो को मानते हुए लिखा है[८]--

"The invention of Sitar is commonly credited to the famous Singer Amir Khusrau of the Court of Sultan Allaudin in the Fourteenth Century. It is probably of Persian origin".

उपर्युक्त विवरण में पोपले सितार की उत्पत्ति के संबंध में इसे पर्शिया का बता रहे हैं जोकि वास्तव में तथ्यों के काफी नजदीक है। जबकि आज से करीब ५५ वर्ष पूर्व सन् १९२९ में लखनऊ विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक मोहम्मद वहीद मिर्जा ने अमीर खुसरो पर शोध-निबंध लंदन विश्वविद्यालय में भेजा था। यह निबन्ध १९३५ ई० में पुस्तक के रूप में छपा। इस पुस्तक की एक प्रति संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली में है। इस पुस्तक में कहीं भी अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक नहीं बताया गया है। इनके अनुसार सितार एक प्राचीन वाद्य है जोकि भारतीय एवं ईरानी संस्कृतियों के परस्पर मेल की अवधि के मध्य किसी समय भारत में विकसित हुआ है। यह विचार काफी तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। वहीद मिर्जा अपने विचारों को बिम्ब उद्धरण में प्रकट करते हैं -- "But unfortunately I have been unable to trace the name Sitar Anywhere in Khusrau's writings, although there are pages full of description of various instruments used in his time".

पुन: "But still the fact remains that even some reliable authorities ascribe to Khusrau the invention of this instrument and there is no doubt that it was evolved from earlier instruments during the time when Persian and Indian cultures came into close contact. The Sitar which resebles the Persian Tanbur in shape and the Indian Veena in Principle, is itself an epitone of Indian- Persian Civilization".

वास्तविकता भी यही है कि सितार की आकृति ईरानी है तथा तंबूर (यह भी सर्वसम्मति से ईरानी वाद्य स्वीकार किया जा चुका है) से मिलती है। वास्तव में यह भारतीय वाद्य नहीं हैं लेकिन इसके नियम एवं जो वाद्य पद्धति आज प्रचलित है, इन सबका विकास भारत में ही हुआ है। भारत में सितार के बाह्य रूप में परिवर्तन अवश्य किया गया है। परन्तु बाह्य रूप का परिवर्तन भारत में होने से अगर हम सितार को

भारतीय कहें तो यह उचित नहीं होगा। इस आधार पर हम यह पूर्णत: कह सकते हैं कि सितार के आविष्कार का श्रेय जो लोग अमीर खुसरो को देते हैं, वे संभवत: किसी भ्रमवश (इस भ्रम का कारण इस भाग में आगे बताया गया है) अथवा जातीयता (रसीद मलिक के विचारों से[10] — इस बात पर पिछले भाग में पूर्ण प्रकाश डाला चुका है) के कारण ही देते हैं।

इसके बावजूद भी कुछ विद्वानों ने यह सोचना प्रारम्भ किया कि अगर अमीर खुसरो ने सितार नहीं बनाया तो खुसरो का नाम सितार से के० विल्डँ तथा मोहम्मद करम इमाम ने कैसे जोड़ दिया। इस संबंध में आचार्य बृहस्पति कल्पित 'खुसरो खाँ' द्वारा सितार का आविष्कार का प्रचार करने का प्रयास करते हुए प्रतीत हो रहे हैं। इस संबंध में आचार्य बृहस्पति कहते हैं[11] --

"सदारंग के भाई खुसरो खाँ संगीत के मर्मज्ञ थे। वह अनेक वाद्यों को बजाने में कुशल थे। उनमें आविष्कारिणी प्रतिभा थी। सितार का परिवर्तन करने वाले यही हैं। उनके सितार में केवल तीन तार थे और उसका नामकरण तक उस युग में ना हुआ था। कला के क्षेत्र में खुसरो खाँ का व्यक्तित्व विद्रोही था। अपनी साधना और प्रतिभा के बल पर खुसरो खाँ ने कला जगत में सितार की जड़ें जमा दीं। कालान्तर में सितार वादकों ने सितार को पुराना सिद्ध करने के लिए अमीर खुसरो के मत्थे मढ़ दिया। खुसरो खाँ से पूर्व किसी सितार वादक का उल्लेख किसी इतिहासकार अथवा संगीतकार ने नहीं किया है। खुसरो खाँ से 'तीन-तार वाले इस बाजे का वादन सुनकर प्रत्यक्षदर्शी नवाब दरगाह कुली खाँ ने इसे इस वाद्य को एक विचित्र वस्तु कहा था।'

इसी प्रकार आचार्य बृहस्पति के कथन का अनुकरण करने वालों में से डा० रमा-वल्लभ मिश्र भी हैं। इनके अनुसार --'सबसे प्रबल साक्ष्य इस तथ्य का है, नवाब दरगाह कुली खाँ की लिखी पोथी 'मीराते दिल्ली' उन्होंने स्वयं इन शब्दों में लिखा है, --

`नेमत खां `सदारंग` का भाई खुसरो खां संगीत का उद्भट विद्वान है। उसने एक तीन तारों वाला नया बाजा सहतार बनाया है, जिस पर वह नई-नई राग-रागिनियां बड़ी कुशलता से बजाता है।` केवल यही साक्ष्य खुसरो खां को सितार का आविष्कारक सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।`

पुन:

`केवल खुसरो खां के कर्तृत्व का श्रेय उससे शताब्दियों पूर्व उत्पन्न हुए अमीर खुसरो को देने वालों की बुद्धि पर तरस आता है।`

पुन:

`सितार का निर्माण त्रितंत्री वीणा के आधार पर हुआ है। त्रितंत्री वीणा तथा कुछ तारों वाली जंत्री (लोकवाद्य) भारत में बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित थीं, परन्तु उनको कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। त्रितंत्री में तीन तूंबे बराबर रखे हुए थे तथा तीन तंत्रियां होती थीं। एक + + + इसमें १६ परदे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि खुसरो खां ने इसी जंत्री में परिवर्तन करके एक नए साज का निर्माण किया और उसका नाम रखा सहतार।`

एक अन्य शोधकार्य में भी खुसरो खां को सितार का आविष्कारक बताते हुए कुछ मौखिक उल्लेखों से अपने कथन की पुष्टि करने की चेष्टा की गयी है।[१४] इनके अनुसार सितार की उत्पत्ति तंबूर से हुई है। खुसरो खां के सम्बन्ध में इनके तर्क निम्न हैं --

(१) कै० विलर्ड के द्वारा सितार को एक नवीन वाद्य बताने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे चौदहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो के विषय में नहीं कह रहे हैं। कैप्टेन विलर्ड का पहला वाक्य कि सितार एक नवीन वाद्य है, उनका आंखों देखा तथ्य है, जबकि इनका दूसरा वाक्य कि सितार को अमीर खुसरो ने बनाया, मात्र श्रवण का अनुसरण ही है। इस विषय पर आगे विस्तारपूर्वक बतायागया है।

(२) नातकर के अनुसार बीन, अकबर के समय में नौबत खां द्वारा परिचित कराई गयी तथा सितार बाद में बीन को आधार बनाकर अमीर खुसरो द्वारा विकसित किया गया ।[१५]

परन्तु यह मत कि `सितार बीन के आकार के आधार पर बनाई गई ।` इसे इस अध्याय के `क` भाग में आधारहीन सिद्ध किया जा चुका है । अत: अमीर खुसरो से संबंधित यह विचार ऐतिहासिकता से रहित हैं ।

(३) सुदर्शनाचार्य द्वारा रचित संगीत सुदर्शन (१९१६) में सितार के आविष्कर्ता अमीर खुसरो `फकीर` बताए गए हैं जो तानसेन की लड़की के वंशज तथा फिरोज खां के पिता एवं मसीत खां के बाबा थे ।[१६]

(४) लक्ष्मीदत्त राय चौधरी के अनुसार अमीर खुसरो फिरोज खां व मसीत खां के पिता थे ।[१७]

उपर्युक्त दोनों तथ्य एक दूसरे से भिन्न हैं तथा अनुचित हैं । क्योंकि न तो फिरोज खां एवं मसीत खां का पिता-पुत्र का रिश्ता था तथा न ही फिरोज खां एवं मसीत खां भाई थे । इस तथ्य पर तृतीय अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है ।

इन तीनों संगीतशास्त्रियों ने सितार के आविष्कारक खुसरो खां को मानते हुए भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए हैं । यदि इन्हें सत्यता की कसौटी पर तौला जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपने-अपने कथनों की पुष्टि करने का असफल प्रयास कररहे हैं । जिस प्रकार आचार्य बृहस्पति ने सन् १९७६ ई० में स्वकल्पित धारणा बड़ी ही चतुराई से प्रस्तुत की है कि `खुसरो खां से तीन तार वाले बाजे का वादन सुनकर प्रत्यक्षदर्शी नवाब दरगाह कुली खां ने एक विचित्र वस्तु कहा था ।`

उपर्युक्त वक्तव्य में ऐतिहासिकता को छिपाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जैसे 'सदारंग' का भाई खुसरो खां था -- ऐसा इतिहास में कहीं नहीं लिखा है। यथा बृहस्पति द्वारा दरगाह कुली खां की पुरानी देहली की हालत में वर्णित वाक्य में खुसरो खां नाम का प्रयोग भी असंगत है। अत: बृहस्पति का खुसरो खां की उपस्थिति मान लेना पूर्णत: निराधार कल्पना का ही उन्नयन है।

आचार्य बृहस्पति के वक्तव्य से ही समानता रखते हुए रमावल्लभ मिश्र भी उनसे प्रेरित हुए प्रतीत होते हैं। इन्होंने तो स्पष्ट वाक्यों में ही लिख दिया है कि पुरानी देहली की हालत में यह लिखा है -- 'सदारंग' का भाई खुसरो खां संगीत का उद्भट विद्वान है आदि।'[१३] साथ ही रमावल्लभ मिश्र त्रिंत्री वीणा के आधार पर सितार की उत्पत्ति बता रहे हैं, जिसे इस अध्याय के भाग 'क' में असंगत सिद्ध किया जा चुका है। इस प्रकार रमावल्लभ मिश्र किसी भी तरह खुसरो खां को सितार का आविष्कारक सिद्ध करने का अप्रामाणिक प्रयास कर रहे हैं।

इसी सम्बन्ध में तीसरा मत एक शोधकर्त्री का है जिनके शोधकार्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वास्तविकता को जानते हुए भी कल्पित खुसरो खां से सितार की उत्पत्ति अथवा विकास मान रही हैं।[१४] ये यह तो मानती हैं कि दरगाह कुली खां ने अपनी पुस्तक में कहीं भी खुसरो खां का नाम नहीं दिया है, परन्तु मौखिक एवं उपर्युक्त अनैतिहासिक तथ्यों से खुसरो खां की उपस्थिति बताने का भरसक प्रयास कर रही हैं। यह डा० मुनीश्वर दयाल द्वारा कथित मौखिक कथन को, 'कि खुसरो खां न्यामत खां का छोटा भाई था,'[१५] एक प्रमाण मानती हैं एवं उनके इस कथन को कि 'हसन कुली खां (दरगाह कुली खां) के खुसरो खां से पूछने पर कि उसने इस तीन तार वाले वाद्य का क्या नाम रखा है ? तो खुसरो खां ने कहा कि मैंने इस वाद्य का अभी कोई नाम नहीं रखा है, परन्तु क्योंकि इसमें तीन तार हैं, इसलिए मैं इसे सहतार नहीं कहूंगा।' नजरंदाज

करती हुई प्रतीत होती हैं।[१४] जबकि दरगाह कुली खां द्वारा रचित पुस्तक के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि न्यामत खां के भाई ने कोई नया वाद्य नहीं बनाया था अपितु सहतार वाद्य की वादन शैली ही बनायी थी, जो आश्चर्यजनक थी।

इसी संदर्भ में एक अन्य उल्लेख में[१८] 'न्यामत खां के छोटे भाइयों का नाम नामदार खां एवं घनाजाद खां बताया गया है', परन्तु इस कथन पर कोई टिप्पणी नहीं दी है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों उल्लेखों में जिस खुसरो खां को सितार की उत्पत्ति का श्रेय दिया गया है, वह आचार्य बृहस्पति की मनगढ़ंत कहानी द्वारा एक कल्पित खुसरो खां की नींव डालने का परिणाम है, जो कि ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता से पूर्णतः परे है। इन तीनों विवरणों में खुसरो खां को सितार का आविष्कारक मानने पर भी भिन्न-भिन्न मतों को प्रतिपादित किया गया है। यथा बृहस्पति केवल खुसरो खां से, रामवल्लभ मिश्र खुसरो खां द्वारा त्रितंत्री वीणा से तथा शोधकर्त्री खुसरो खां द्वारा तंबूर से सितार की उत्पत्ति बता रहे हैं, जबकि तीनों कथन ही असंगत एवम् असत्य हैं। अगर इस ग़लत धारणा में अब भी सुधार नहीं किया गया तो जिस प्रकार के० विलर्ड द्वारा अमीर खुसरो को सितार से संबंधित कर देने से आज लोगों के मस्तिष्क में यह सम्बन्ध दृढ़ होकर रह गया है, तथा उसका स्पष्टीकरण करना अल्प अध्ययन से असंभव है, उसी प्रकार आज से पचास-सौ साल बाद लोग सितार को खुसरो खां से संबंधित बता कर, इस असत्य अमान्य, निराधार, अनैतिहासिक एवं अप्रामाणिक कथन को ही पुष्ट मानेंगे तथा वास्तविकता का पता लगाना ही मुश्किल हो जायगा। जबकि अगर दरगाह कुली खां की पोथी 'मीराते देहली' को ही विचारपूर्वक देखा जाय (जो सन् १७३८ ई० में पर्शियन भाषा में लिखी गयी थी) तो भी काफी सही जानकारी मिल सकती है।[१९] इसमें न्यामत खां एवं उसके भाई के विषय में निम्न कथन कहे गये हैं कि 'नेमत खां एक

बीन-नवाज़ थे तथा नेमत खां के भाई ४-४ घंटे बजाते थे । ये सहतार बजाने में इतने निपुण थे कि इन्होंने इसे बजाने का नया तरीका निकाला था । जो चीज़ बड़े-बड़े तंत्र वाद्यों पर बजती थी, वह उससे बढ़िया अपने सहतार पर बजाते थे, यह संसार का बहुत बड़ा आश्चर्य था । मैं बहुत किस्मत वाला हूं जो मुझे उनकी संगति मिली । कभी-कभी पूरी रात उनके पास रुक जाता था । वे मेरे कहे की कभी ना नहीं करते थे । जब वह सहतार पर गाते हैं तो दिल चीरकर रख देते हैं । एक राग से दूसरी रागिनी निकालते समय, एक परदे से दूसरे परदे पर जाते समय कहीं भी आवाज़ नहीं होती । वह इतना प्रभावशाली बजाते हैं कि बजाते-बजाते गाने लगते हैं । उनके आगे दूसरे गाने वाले मुंह खोलने में भी डरते हैं । उनमें एक रस है जो अन्यत्र नहीं आ सकता ।'

इस प्रकार 'मीराते देहली' नामक पुस्तक में खुसरो खां नाम कहीं नहीं मिलता है ।

पर्शियन साहित्य की एक अच्छी पुस्तक, जो विलियम इरविन द्वारा लिखी गयी है, में भी न्यामत खां एवं उनके भाइयों का कुछ विवरण आता है । वह इस प्रकार है[१८] -- ' न्यामत खां जहांदेर खां के दरबार में एक अच्छा तंबूर वादक था उसके दो भाइयों को जहांदेर शाह ने नामदार खां और धनाजाद खां की उपाधि दी थी । इन दोनों भाइयों के संगीत-कौशल का मज़ाक उड़ाते हुए काम्बर खां लिखते हैं कि कौए ने कोयल की तथा उल्लू ने हंस की जगह ले ली है ।' इस पुस्तक में न्यामत खां को लाल कुंवर का भाई बताया है । लालकुंवर के पिता का नाम खसूसियत खां था, इन्हें तानसेन के घराने का बतलाया गया है । परन्तु 'पुरानी देहली की हालत' में न्यामत खां के घराने के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है तथा वहां अन्य दो गायकों का वर्णन किया गया है, जिन्हें तानसेन के घराने का बतलाया गया है । इस प्रकार इन दोनों लेखों में से कौन सा सही है, यह कहना बहुत कठिन है । जैसा हो सकता है

कि न्यामत खां लालकुंवर का रिश्तेदार हो। ऐसी परिस्थिति में ये दोनों लेख उचित हो सकते हैं। लेकिन इस विषय पर और अधिक शोधकार्य करने की आवश्यकता है।

विलियम इरविन की पुस्तक में जिस प्रकार से उस समय की राजनीति, लाल कुंवर का प्रभाव इत्यादि - इत्यादि लिखा है, उससे काम्बर खां के द्वारा कहा गया न्यामत खां के भाइयों का वर्णन काफी उचित प्रतीत होता है। यह दो भाई कौन थे, इस विषय पर इससे अधिक जानकारी साहित्य में नहीं मिलती। कुछ भी हो, न्यामत खां जो `सदारंग` के नाम से प्रसिद्ध था, उसके साथ फिरोज खां `अदारंग` का ही नाम काफी आदर के साथ लिया जाता है जिससे इतना तो कहा जा सकता है कि न्यामत खां तथा फिरोज खां दोनों ही उच्चकोटि के संगीतकार थे।

`मीराते देहली` पुस्तक में दरगाह कुली खां का सहतार के बारे में वर्णन यह नहीं दर्शाता कि यह वाद्य उस समय नया आविष्कृत था बल्कि उनके उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि सहतार उस समय पहले से ही प्रचलित था। तथा उसे बजाते समय गाने की भी प्रथा थी। इस उल्लेख से इतना अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि न्यामत खां के कथित भाई ने सहतार बजाने में काफी प्रवीणता हासिल की तथा उस पर बजाने के लिए एक नयी वादन शैली का निर्माण किया। जो सामग्री इस छोटे से वाद्य पर बजायी नहीं जाती थी तथा जिसके लिए बड़े वाद्यों की ज़रूरत पड़ती थी, वह उसको भी इस वाद्य पर बजाने में प्रवीण था।

फिरोज खां `अदारंग` की जीवनी पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य सामने आता है कि फिरोज खां ही न्यामत खां का कथित छोटा भाई हो सकता है क्योंकि न्यामत खां का `सदारंग` नाम उसके कुछ समय के लिए दिल्ली छोड़ने के बाद ही प्रचलित हुआ। डी०टी० जोशी के अनुसार उस समय न्यामत खां तथा फिरोज खां ने अपने

ख्यालों को 'सदारंग' एवं 'अदारंग' नामों से रचा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दरगाह कुली खां के देहली प्रमण से पूर्व ही फ़िरोज खां 'अदारंग' के नाम से देहली में मशहूर था। दरगाह कुली खां ने फ़िरोज खां या 'अदारंग' के नाम से कुछ भी वर्णन नहीं किया है जबकि उस समय के सभी संगीतकारों का उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक में विस्तारपूर्वक किया है -- यह एक आश्चर्यजनक बात लगती है। दरगाह कुली खां का जिस संगीतकार के साथ इतना नज़दीकी सम्बन्ध था, वे कहते हैं कि, 'वह न्यामत खां के भाई के पास पूरी-पूरी रात बिता दिया करते थे तथा वे मेरे कहे को कभी ना नहीं करता था', फिर भी उनका अपनी पुस्तक में नाम न देना यही सिद्ध करता है कि वह व्यक्ति न्यामत खां के छोटे भाई के नाम से ही इतना प्रचलित था कि उसका नाम देना अनिवार्य नहीं था।

अब यह चिन्तन का विषय है कि न्यामत खां का इतना प्रचलित छोटा भाई कौन था? बाकी साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि न्यामत खां के साथ एक ही व्यक्ति काफी प्रचलित था जिसका नाम फिरोज खां उपनाम 'अदारंग' था। यह संभव है कि दरगाह कुली खां ने न्यामत खां के छोटे भाई का नाम लिखना इसलिए आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि संगीत के क्षेत्र में न्यामत खां का छोटा भाई कहने से ही 'अदारंग' की अनुभूति हो जाती थी। मौखिक उल्लेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है। दरगाह कुली खां के द्वारा किया गया न्यामत खां के छोटे भाई का संगीत की उपलब्धियों का वर्णन अगर ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह फिरोज खां के बारे में ही लिख रहे हैं क्योंकि यह प्रमाणित तथ्य है कि सर्वप्रथम सहतार पर फिरोज खां ने ही बजाने की अलग वादन शैली निकाली तथा फ़िरोजखानी बाज का निर्माण किया।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि खुसरो खां का साहित्य में कोई स्थान नहीं है तथा न्यामत खां का छोटा भाई कोई और नहीं, बल्कि फ़िरोज

खाँ ही था । इस संदर्भ में मोहम्मद करम इमाम का कथन भी उल्लेखनीय है । इन्होंने जिस विश्वासपूर्वक 'सदारंग' और 'अदारंग' को भाई बताया है [२०] उससे संदिग्धता का अंशमात्र भी नहीं रह जाता । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सितार का आविष्कारक खुसरो खाँ नामक कोई व्यक्ति नहीं था । संभवत: यह खुसरो खाँ नाम अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक न मानने, सितार को पूर्णत: भारतीय सिद्ध करने तथा किसी भी खुसरो के साथ सितार को जोड़ने की भ्रान्त धारणा से ही आया है । इस खुसरो खाँ का संगीत साहित्य में तथा सितार के आविष्कार में किसी भी प्रकार का सहयोग रहा -- यह कहना सत्य पर परदा डालना ही होगा । सत्य तो यह है कि इस खुसरो खाँ नामक व्यक्ति का संगीत के इतिहास में भी वर्णन करना असंगत है ।

मोहम्मद मिर्जा के अनुसार[६] सितार की आकृति तंबूर के समान है तथा यह वाद्य भारतीय एवं ईरानी संस्कृतियों की परस्पर मेल के, किसी समय ही भारत में आया । यह विचार वास्तव में तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि अगर पर्शियन साहित्य पर दृष्टिपात किया जाए तो सितार शब्द तथा सितार जैसे वाद्यों का (जो ऊद आदि नामों से जाने जाते हैं) काफी विवरण मिलता है । यह निम्न उल्लेखों से स्पष्ट होता है । सर्वप्रथम कुछ पर्शियन कोषों का वर्णन किया जा रहा है जिससे सितार के विषय में कुछ महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है ।

(१) पर्शियन इन्सायक्लोपीडिया 'लोधातनामा' में सहतार वाद्य, जो कानूनी भाषा में काफी प्रचलित था, का ज़िक्र मिलता है ।[२१] 'दरज़बान कनूनी नीज सहतार ।'

(२) हिन्दी कोष 'आनन्दराज' तथा पर्शियन कोष 'शराफनामा' में भी सितार व सहतार शब्द आया है ।[२२] यथा --

'नाम साज़े अस्त वो सितारह,
गायदश वो नीज़ सहतार ।'

(३) इसीप्रकार बृहत्कोष में सहतार व तंबूरे को एक ही वाद्य कहा गया है ।[२२]

" तम्बूराह के साज़ेरा गोयंद कि सेहतार दाश्ताह वाषद । "

अगर सहतार शब्द का संधि-विच्छेद किया जाए तो निम्न अर्थ निकलता है --

सहे + तार + हे (निस्बत) ढराए । सहे सीम रक्त ।[२१]

`निस्बत` का अर्थ है रिश्ता । `सेह` का मतलब है वाद्य के तार । `रत` का मतलब गरदन का मिलाना है तथा `दराए` का अर्थ है लाल सिल्क के धागे से सख्ती से पकड़ना । अत: जैसे गर्दन में माला होती है, उसी प्रकार लाल सिल्क के तार डांड के ऊपर से गुजरते हैं ।

तंबूरा अरब का एक प्रसिद्ध वाद्य है । इस सम्बन्ध में दो प्रकार के तंबूरों का वर्णन मिलता है [२३] --

(१) प्रथम जिसे शास्ता कहते हैं जिसका अर्थ है छह तार ।

(२) द्वितीय सहता कहलाता है । इसमें तीन तार होते हैं, जैसाकि शब्द का भी अर्थ है । यह मुख्यत: सहतार के नाम से पहचाना जाता है ।

लोधातनामा में तंबूरे को एक तत् वाद्य बतलाया गया है जिस पर चांदी के तार लगे होते हैं तथा जो चांद, रबाब और सहतार आदि से मिलता-जुलता है ।[२४] फ़ारसी भाषा में अरब के तंबूरे को दुम्बारा भी कहते हैं, जिसका अर्थ है भेड़ के बच्चे की पूंछ (अरब में `सहतार` का वर्णन करते हुए उमेश जोशी भी उसे भेड़ की खाल से मढ़ा हुआ बता रहे हैं जैसाकि पिछले भाग में वर्णित किया जा चुका है) ।

`आनन्दराज कोष` में तंबूरे का अर्थ कड़वा कद्दू बतलाया गया है ।

उपर्युक्त कोषों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सहतार, तंबूर आदि वाद्य पर्शियन संस्कृति में ही ज्यादातर पाए जाते हैं [२५] तथा सहतार एवं तंबूर अगर एक ही वाद्य नहीं हैं तो कम से कम एक ही प्रकार के तो हैं ही ।

इसी प्रकार 'द न्यू आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ म्यूज़िक' में भी भारतीय वाद्यों के वर्णन में सितार का उल्लेख किया गया है ।[२६] इसमें सितार की उत्पत्ति का स्थान पर्शिया बताया गया है । इससे भी सितार का मूल पर्शिया होने का ही प्रमाण मिलता है ।

'तार' नामक वाद्य आज भी काकेशिया तथा बार्जिया का राष्ट्रीय संगीत-वाद्य माना जाता है ।[६]

उपर्युक्त सभी विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार एवं उसी जाति के अनेक वाद्य पर्शिया तथा उसके आसपास के देशों में आरम्भ से ही उसी प्रकार प्रचलित थे जिस प्रकार हमारे देश में विभिन्न वीणाएं प्रचलित थीं ।

प्राचीन पर्शियन साहित्य में सितार को 'सिता' या 'सिते' भी कहा गया है । पर्शियन भाषा में 'ता' या 'ते' का अर्थ है 'तांत' जिसे बाद के काल में तार कहा जाने लगा । पर्शियन साहित्य अध्ययन से पता चलता है कि इस साहित्य में फिर्दवासी तथा बाद में निज़्मी गांजवी ने भी सिता एवं सिते शब्दों को एक ही वाद्य बताने के लिए प्रयोग किया है ।[२७] इस प्रकार पर्शियन साहित्य में इस वाद्य का वर्णन प्रारम्भ से ही मिलता है तथा यह वाद्य उस संस्कृति में शुरु से एक मुख्य भूमिका निभाता रहा है ।

निम्न उल्लेख पर्शियन संस्कृति में विख्यात है तथा उसके पूर्व प्रमाण भी हैं कि खुसरो परवेज (५८०-६२६ ए०डी०) के दरबार में बरबत नाम का एक मंत्री था, जो कि बहुत ही अच्छा सिते या सितार बजाता था । साधारणत: यह धारणा है कि गायक बरबत अपने सिते या सितार पर बजाते हुए गाता था तथा उसका प्रतिद्वन्द्वी नकीसा चांग पर उसको संगत देता था । शिहाब सरमदी के अनुसार यह तथ्य अकस्मात ही उस तथ्य से मिल गया है जो अमीर खुसरो अपने व उस्ताद मोहम्मद शाह चंगी के बारे में कहा करता था आदि विवरण निम्न प्रकार है[२८]--

"It is also evidenced that this has been instrument par excellance in the hands of Barbad, the immortal court minister of K Khausraw Parwez(A.D580-629). The usual image is,Barbad, the vocalist, plays upon his Sitay/Sitar and sings, while his th invetrate rival Nakisa keeps company on Chang. This is so coincidental with what Amir Khusraw has to inform about himself and Ustad Mohammad Shah Changi. The only difference being that like a self-trained Indian of the times he is nowhere on record to have held any instrument while singing."

शिहाब सरमदी साहब ने यह अपने उल्लेख में गंज के निज़ामी द्वारा 'मसनवी खुसरो-शरीन' तथा खुसरो द्वारा उसकी मसनवी 'तुगलक नामा' में लिखे गए विवरणों को बहुत स्पष्टता से उतारते हुए समझाया है।

इस प्रकार सितार के साथ खुसरो शब्द के जुड़ने का बहुत ही तर्कसंगत कारण मिल जाता है।

इस सितार का आकार एवं रूप जैसा था, हमेशा वैसा ही रहा- एक पंजा (सिर) तीन गोशिश (खूंटियां), एक दस्ता (तना) सीधा व पतला जिसमें तीन तार थे तथा कोई परदे नहीं लगे होते थे। इसमें एक प्याली या नारियल के आकार का तूंबे वाला भाग था, जो नीचे से पतला तथा नाशपाती के आकार का था। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता था तथा उस पर एक पतली धारवाली दहना (मुंह) लगी होती थी। यह प्रारम्भिक सितें या सितार था। यह सितार, जो गाने के साथ बजाया जाता था, आज तक जैसा था वैसा ही रहा। शुरु के इस्लाम के दिनों में सितार कितारा के नाम से सातवीं शताब्दी में तुर्क में अत्यधिक प्रचलित रहा। इसी प्रकार डा० फारमर के अनुसार यह अरब में कौत्रा के नाम से जाना जाता था, जो 'अल्उद' से छोटा था तथा इसमें कोई परदे नहीं होते थे। इसका ऊपरी भाग मुड़ा होने की बजाय सीधा होता था।[२६]

मशहूर 'फारबी' (९५० ए०डी०) तथा 'किताब-अल-अघानी' के लेखक अबुल-फरज-ए-इस्फहानी (अली-अल-स्फहानी) (८९७-९६७ ए०डी०) ने भी दसवीं शताब्दी में ऊपर वर्णित सितार या सिते का वर्णन किया है। इसी प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी के मशहूर लेखक फिर्दवासी तथा बाद में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के लेखक निज़मी ने भी अपने पर्शियन लेखों में इस सितार को मान्य माना है।[२९] इन सब पर्शियन साहित्यिक उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वाद्य तेरहवीं शताब्दी तक अरब की संस्कृति में एक प्रमुख स्थान पर रहा। भारत में सितार का विस्तारपूर्वक वर्णन सर्वप्रथम कैं० विलर्ड के लेख में प्राप्त होता है जो सन् १८३४ ई० में लिखा गया था। इनके दिए गए सितार के वर्णन का काल सन् १८३४ ई० से कुछ ही समय पूर्व का रहा होगा। यह एक रुचिकर तथ्य है कि सन् १८३१ (१२४७ हिजरी संवत) में लिखी गई एक पर्शियन पुस्तक 'नग्मतुल अजायब' में भी सितार को खुसरो से इस प्रकार जोड़ा गया है कि 'खुसरो ने सितार पर तीन तार लगाए, ताकि वह अपनी खुशी के लिए कभी-कभी बजा सकें'।[३०] महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पुस्तक के अंत में लेखक ने सितार को चित्रित भी किया है जैसे किसी को समझाया गया हो। इस आकृति पर दृष्टिपात करने से लेखक द्वारा वर्णित सितार की आकृति की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें एक प्याले की आकृति का तूंबे वाला भाग है, वाद्य में तीन तार हैं तथा तूंबे एवं परदों की कोई व्यवस्था नहीं है। लेखक ५८०-६२९ ए०डी० के पर्शिया वाले खुसरो तथा तेरहवीं शताब्दी के भारतीय अमीर खुसरो के विवरणों में साम्यता पाकर भ्रमित होते दिखते हैं।

सन् १८९१ ई० में के० सी०आर० डे ने भी ऐसी ही आकृति का एक वाद्य अपनी पुस्तक में चित्रित किया है, जिसे उन्होंने भी पर्शियन सितार कहा है (चित्र संख्या १)। इनका पर्शियन सितार के विषय में वर्णित उल्लेख निम्न है[३१] --

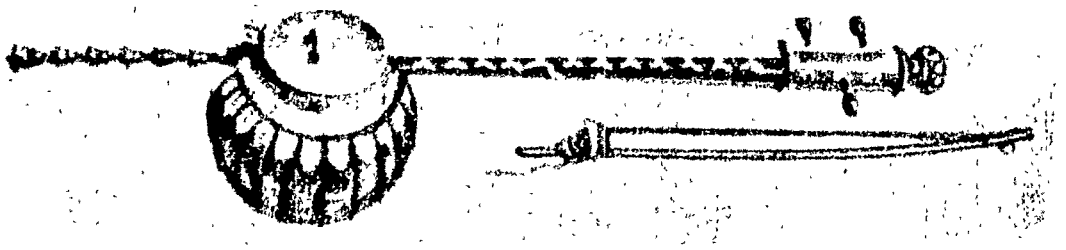

चित्र संख्या 1

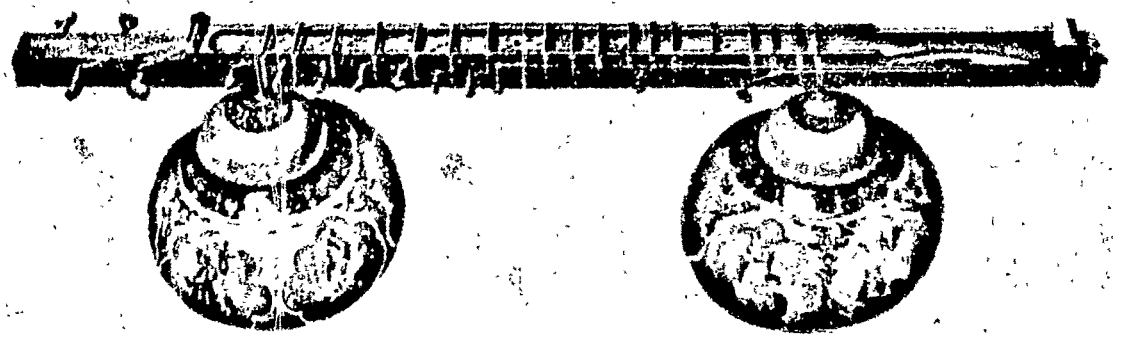

चित्र संख्या 2

"The three-stringed instrument to the right of the plate is the Persian Sitar. Its use in India is very uncommon , but it is some time met within large native cities, such a-s Hyderabad or Jaipur, where it is admired chiefly as a variety. The body of the specimen drawn is of wood, ornamented with ivory, the back of the instrument being left open. As can be seen, the belly is cut of parchment, and the tail-pin which serves as a foot for the instrument, is of brass, rather curiously worked. There are usually three gut strings, tuned like those of a Sarangi and played by means of a bow."

केप्टेन सी०आर० डे की पुस्तक प्रकाशित होने के करीब बीस साल बाद `म्यूज़िक गज़ेट आफ इंडिया` के अक्टूबर तथा नवम्बर सन् १९१० ई० एवं जनवरी सन् १९ ११ ई० में प्रकाशित संस्करणों में सितार का चित्रण एवं वर्णन किया गया है । इस सितार में एक प्याले की आकृति वाला तूंबे जैसा हिस्सा लगा हुआ है पर कोई तूंबा नहीं है । इसमें परदों की व्यवस्था भी है । इस सितार पर तीन से पांच तार लगे हुए हैं, जिनमें से मुख्य तीन ही हैं ।

मोहम्मद करम इमाम खां भी अपने समय के एक `सादा सितार` के विषय में लिखते हैं कि `इसमें बीन की कुछ विशेषताओं को अपनाया गया है, परन्तु इसकी वादन शैली मुख्यत: इसके तीन तारों पर ही निर्भर करती है जिनमें एक लोहे का तथा दो पीतल के तार हैं । लेखक ने मुख्य सितार को `इकहरी तूंबी वाला सितार` के नाम से संबोधित किया है ।`[३२] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सादा सितार में तूंबा नहीं था तथा यह सादा सितार भी पर्शियन सितार ही था ।

उपर्युक्त साहित्यिक प्रमाणों से यह प्रमाणित हो जाता है कि पर्शियन सितार का उल्लेख अरबी साहित्य में सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक विभिन्न पुस्तकों में मिलता है । इस पर्शियन सितार, जो कि मुख्यत: गाने के साथ प्रयोग किया जाता था, में उन्नीसवीं शताब्दी तक भी कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ । परन्तु बीसवीं शताब्दी

के प्रथम दशक में प्राप्त उल्लेखों से इसकी क्रमश: विकासोन्मुखता का आभास होता है।

हरबर्ट ए० पोपले ने सितार के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी दी है। इनके अनुसार[८] --The Principles of Sitar are same as those of the Vina but there are considerable differences in construction. It is a much smaller instrument. Like the Vina, it has a belly made of jack or some other resonant wood, but there is no curved neck and no gourd.....The number of strings is usually seven. The frets very from Sixteen to Eighteen in number for an octave and a half on each string. The Carnatick Sitar is some what different. It has a much thinner and shorter neck and is shaped something like a Tanbur. Only the first two strings pass over the frets about half an inch wide and raised from the finger boards. These two strings are placed much nearer together than the other strings..... Usually there are about 14 frets, which are placed at the intervals of the diatonic Scale".

इस प्रकार पोपले ने प्रमुख सितार तथा कर्नाटक सितार के तारों को मिलाने की विधि भी दी है। यह सितार को पर्शियन वाद्य मानते हैं। इनके इस विवरण में कर्नाटक सितार पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। कुछ इसी प्रकार के कर्नाटक सितार का वर्णन कैप्टेन सी०आर० डे ने भी अपनी पुस्तक में किया है, जो निम्न - लिखित है[३१] -- "But besides the Sitar just described there is anotherform of instrument to be met with in southern India. It might be called the Carnatik Sitar, and it differs from the ordinary Sitar, in that it is confined in its intonation and is generally made with a much thinner and shorther neck....It is usually shapped some what like a Tanburi....."

"Karnatik Sitars are sometimes found fretted with throughout in Semi-tonic intervals, the number of frets being the same as in a Vina.....".

कर्नाटक सितार तथा प्रारंभिक पर्शियन सितार का विकास, अठारहवीं शताब्दी में प्राप्त मुख्य विकसित सितारों की उपस्थिति पर कुछ प्रकाश डाल सकता है ।

शारंगदेव की त्रितंत्रिका[३३] पर कल्लिनाथ ने टिप्पणी कसते हुए त्रितंत्रिका को एक तीन तारों वाले लोकवाद्य की वीणा बताया है तथा उसे जंत्र नाम दिया है ।[३४] यह लोकवाद्य सिवाय नाम के, सितार से बिल्कुल नहीं मिलता, क्योंकि प्रारंभिक पर्शियन लेखक, जिन्होंने मध्यकालीन भारतीय संगीत पर लिखा है (इनमें अमीर खुसरो भी हैं), इन सब विद्वानों ने इस लोकवाद्य (जंत्र) पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया । जिन विद्वानों ने इस वाद्य के विषय में लिखा है, वे सब जंत्र तथा बीन को ही दो प्रमुख तत् वाद्य मानते हैं ।

जंत्र एवं बीन वाद्यों का वर्णन करने वालों में इब्राहीम आदिल शाह, अबुल फज़ल, फ़कीरुल्लाह तथा मुल्ला तुघरा मशहादी इत्यादि हैं । अबुल फ़जल के अनुसार जंत्र तथा बीन एक ही प्रकार के वाद्य हैं ।[३५] इसी प्रकार फकीरुल्लाह तथा अन्य लेखकों ने भी इन दोनों वाद्यों को एक समान ही बताया है । इन दोनों वाद्यों के चित्रित वर्णन भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं । जी०एन० टैगौर तथा ए०के० कुमारस्वामी द्वारा दो मुख्य चित्रों के संग्रह किए गए हैं जिनमें बीन तथा जंत्र के चित्र हैं । तीन तारों वाली बीन में तो परदे एकदम साफ दिखाए गए हैं, परन्तु तीन तारों वाले कल्लिनाथ के जंत्र में परदे नहीं हैं, अत: इन दोनोंवाद्यों को एक नहीं बताया जा सकता, जब तक कि यह न मान लिया जाय कि जंत्र ही बीन के रूप में विकसित हुआ । इस तथ्य की पुष्टि बीन के क्रमिक विकास से भी मिलती है । जैसे मोहम्मद शाह रंगीले के काल में तीन तारों वाली बीन विकसित होते हुए सितार के साथ उपस्थित रही । इसके बाद बीन सितार प्रकाश में आया, जिसके विषय में कैप्टेन सी०आर० डे के विचार निम्नलिखित हैं[३६] --

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार के विकास का अपना अलग ही इतिहास है तथा यह किसी भी रूपमें जंत्र या त्रितंत्री से मेल नहीं खाता। जंत्र या त्रितंत्री बीन के रूप में विकसित हुए एवं बीन सितार (चित्र नं० २) बीन पर उन्नीसवीं शताब्दी में प्रख्यात सितार का प्रभाव ही है।

इस प्रकार सभी उल्लेखों से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीनतम सितार (जिसकी उत्पत्ति पर्शिया में हुई तथा जो गाने के लिए प्रयोग में लाया जाता था एवं प्रयोग में लाया जाता है) की आकृति में कोई विशेष परिवर्तन अबतक नहीं आया है। इस पर्शियन सितार पर हिन्दुस्तानी संस्कृति का प्रभाव पड़ने के कारण भारत में तरबदार एवं परदों वाले पर्शियन सितार की उपस्थिति मिलती है। यह सितार आज तक ज्यादा विकसित नहीं हो पाये हैं। प्रमुख सितार जो कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काफी विकसित हो चुका था, उसका विकास क्रम भिन्न है अत: इसका पर्शियन सितार से विकास पर कुछ प्रकाश डालने के लिए लघु चित्रकारियों तथा सितार से संबंधित कुछ विदेशी वाद्यों की जानकारी होना आवश्यक हो जाता है।

इसी संदर्भ में अब्दुल वाहिद बिलग्रामी द्वारा रचित `हकायके हिन्दी`, जो सन् १५५६ ई० में लिखी गयी थी, सितार की जानकारी देने के लिये काफी सहायक सिद्ध होती है।[३७] इसमें `विष्णुपद` के रूप में लिखी दो मसनवियों में सितार का नाम आया है तथा उसकी बनावट पर भी प्रकाश डाला है जो निम्न है :--

(१) सितार तथा सरोद (बाजे) की आवाज एवं उतार-चढ़ाव निरन्तर गैब (परोक्ष) से इश्क (परम-प्रेम) का रहस्य बताती है। यदि तेरे हृदय में परम-प्रेम की ध्वनि आ जाए तो हृदय के परदों को भी खोल देगी। तू देख कि दोनों लोक परम प्रेम की ध्वनि हैं और खल्क (प्राणी) तथा उम्र (ईश्वर का आदेश) परम-प्रेम के बाजे के परदे हैं।

(२) तार तथा सितार क्या है ? आध्यात्मिक रहस्य है। नदी शुष्क कर दे जिससे तू उस रहस्य को सुन सके।

सूखी नदी, सूखी लकड़ी, सूखी खाल प्रत्येक घड़ी परोक्ष से परम प्रियतम के छिपे हुए रहस्य को बताती है । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि शुष्क तारों तथा लकड़ियों से किस तरह यह ध्वनि निकलती है -- इसे समझ ।

इस पुस्तक में संगीत से संबंधित बहुत महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है । इसके वर्णन से यह ज्ञात होता है कि सोलहवीं शताब्दी में भी भारत में सितार का अस्तित्व था तथा इस पर परदे एवं तारों की व्यवस्था थी ।

इसी प्रकार ए०एम० शुर्तरे ने अपनी पुस्तक में भारतीय संगीत का वर्णन करते हुए एक चित्र का उल्लेख किया है जिसे 'सान' के एक प्रसिद्ध कलाकार साहपुर ने तुगलक युग में चित्रित किया था ।[३८] इसमें सुल्तान के शाही दरबार की एक पूरी संगीत-मण्डली का चित्र अंकित है । चौदहवीं शताब्दी में चित्रित इस चित्र में शहनशाह तख्तासीन हैं जिसने कि सिर पर शिरस्त्राण धारण किया हुआ है । इसके अतिरिक्त इस में नाचती गाती तथा संगीत-वाद्य बजाती युवतियों को दर्शाया गया है । यह युवतियां जो वाद्य बजा रही हैं, वह सितार, वीणा तथा बांसुरी हैं ।

उपरोक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि संभवत: सितार अथवा इसी प्रकार का कोई वाद्य सुल्तान मोहम्मद तुगलक के समय में भी प्रचलित था तथा उसका वादन सुल्तान के दरबार में होता था । इसी प्रकार सवाई प्रतापसिंह देव ने अपने `राधागोविंद-संगीत सार` में लिखा है[३९] कि सितार पर्शिया में एक वाद्य के रूप में तेरहवीं शताब्दी से बजाया जा रहा था । वस्तुत: यह तंबूरे का ही प्रकार था जिसे पर्शिया में तार का नाम दिया गया । हालांकि उसका अरबी नाम तुंबूर है । जिसका अर्थ है तत् वाद्य ।

उपर्युक्त उल्लेख से भी सितार को प्राचीनतम पर्शिया का मानने के मत को पुष्टि मिलती है । सितार के विषय में सामान्यत: कहा जा रहा है कि यह नाम अठारहवीं शताब्दी से पूर्व नहीं था आदि इस विवरण से असत्य सिद्ध हो जाता है । इस मत को कुछ लघु चित्रकारियों द्वारा और स्पष्टता मिलती है जो निम्न हैं :--

पर्शियन मिनिएचर फोटोग्राफ्स, जो बरनर फोरमेन द्वारा खींचे गए हैं, के बारे में वीरा क्यूबिक्कोवा ने लिखा है। इस पुस्तक का अनुवाद आर० फिन्लेसन सेमसार ने किया है।[४०] इसकी सारी सामग्री इम्पीरियल लाइब्रेरी गुलिस्तान के तथा तेहरान के आरक्विओलोजीकल म्यूज़ियम के कुछ ईरानी संग्रहों से ली गयी है। इस पुस्तक के चित्र १ में एक पत्ते पर नास्तालिक में कुछ लिखा हुआ है। इसके नीचे मोहम्मद मोहसन कातिब के हस्ताक्षर हैं तथा सोलहवीं शताब्दी लिखा हुआ है। इस पत्ते के सीधे हाथ के कोने में एक युवक का सेतार बजाते हुए रंगीनचित्र है जो कि तेहरान की गुलिस्तान लाइब्रेरी से लिया गया है (चित्र नं० ३)।

इस कलाकृति को देखने से इस वाद्य पर तांत के परदे दृष्टिगत होते हैं। इसमें चार तार लगे हैं तथा नवयुवक इसे सितार की तरह ही पकड़कर बजा रहा है। इस वादक के वादन की तन्मयता को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस वाद्य की आवाज बहुत मधुर होगी।

इसी पुस्तक में एक चित्र निज़ाम खारुसा की पांच कविताएं, पाण्डुलिपि से लिया गया है, यह भी नास्तालिक में लिखी गयी है।[४१] इस चित्र में एक उल्टे हाथ से बजाने वाला व्यक्ति सितार बजाता दिखाया गया है। यह चित्र भी मध्य सोलहवीं शताब्दी का है (चित्र सं० ४)।

उपर्युक्त वर्णित कलाकृति में जो सितार दर्शाया गया है, वह भी बिल्कुल चित्र संख्या ३ की भांति ही है। इनकी आकृति भी समान है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सोलहवीं शताब्दी में इस प्रकार का सितार तेहरान में अत्यन्त प्रचलित था। अगर इसी काल की भारत में बनी हुई लघु चित्रकारियों को देखा जाय तो ऊपर दिये गये तथ्य को पर्याप्त दृढ़ आधार मिलता है। सन् १९७८ ई० में लिखी गयी पुस्तक में सन् १६३३ ई० की एक चित्रकारी है[४२], इसका शीर्षक 'रायल लवर्स आन ए टैरेस' है। लेखक के अनुसार इस चित्र में शाहशुजा तथा उसकी पत्नी के शादी

चित्र संख्या 3

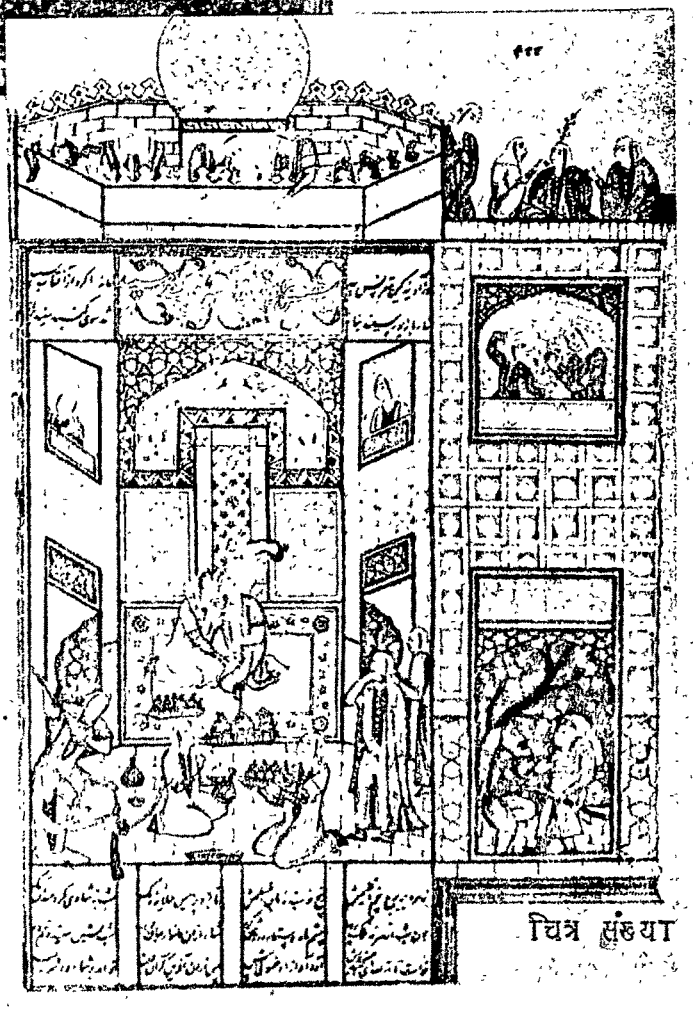

चित्र संख्या 4

का समय दिखाया गया है । इसमें एक संगीतकार, सितार (तंबूरा) जिस पर परदे लगे हैं, बजा रहा है ।

इसी पुस्तक के अगले पृष्ठ पर दाराशिकोह बैठा हुआ दिखाया गया है ।[४३] यह चित्र 'विचित्र' नामक चित्रकार ने अंकित किया है । लेखक के अनुसार इसमें तांत के परदों वाला तंबूरा (सितार) बजाते हुए एक व्यक्ति दिखाया गया है (चित्र संख्या ५) । इस चित्र को देखने से यह वाद्य जिसे निबद्ध तंबूरा कहा गया है, बिल्कुल चौदहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी की अनेक लघु चित्रकारियों में चित्रित सितार जैसा ही प्रतीत होता है ।

एक अन्य पुस्तक, जो सन् १९६२ ई० में लिखी गई है, के पृष्ठ १०८ पर सन् १७४४-१७७३ ई० की बनी एक चित्रकारी अंकित है ।[४४] इस चित्र में एक सितार जैसे वाद्य को, जिसमें १३ से १४ तांत के परदे तथा ६ तार लगे हुए हैं, एक महिला बजाती हुई दर्शायी गयी है (चित्र संख्या ६) । इस वाद्य को बजाने वाली युवती उल्टे हाथ से वादन करती दिखायी गयी है । ठीक इसी प्रकार की चित्रकारी सन् १९६० ई० में छपी पुस्तक में भी मिलती है ।[४५] यह चित्र सन् १७६० ई० में बनाया गया था । इस चित्रित वाद्य में भी १४ परदे तथा ६ तार हैं लेकिन जहां इससे पहले वाली इसी प्रकार की चित्रकारी में इस वाद्य को सितार कहा गया है, वहीं इसे तंबूरा कहा गया है । जबकि दोनों चित्रकारियों की पार्श्व कला भी एक समान है, केवल खूंटियों की स्थिति में अन्तर है ।

इसी प्रकार के वाद्य का चित्र कांगड़ा वैली पेंटिंग में भी मिलता है ।[४६] इसमें चित्रकारी का समयोल्लेख नहीं है । इसमें एक विरहिणी नायिका एक वृक्ष के तले छोटा तंबूर बजा रही है । इस वाद्य में भी ६ खूंटिया (यानी तार) हैं ।

चित्र संख्या 5

चित्र संख्या 6

उपर्युक्त तीनों कलाकृतियों में एक उल्टे हाथ से वाद्य बजाती हुई युवती दिखायी गयी है तथा चित्रकारियों का शीर्षक भी 'विरहिणी नायिका' ही दिया गया है। परन्तु किसी चित्रकारी में उसे सितार, किसी में तंबूर कहा गया है। इस प्रकार की चित्रकारियों को देखने से इस बात को और भी प्रमाण मिलता है कि यह वाद्य भारत में काफी पहले से प्रचलित था।

एक अन्य पुस्तक में सन् १६०५ ए०डी० का एक चित्र अंकित किया गया है, जिसमें एक युवती सितार जैसा ही वाद्य बजाती हुई दिखाई गयी है।[४७] इस वाद्य पर परदे नहीं दिखते हैं।

'द स्प्लेण्डर आफ इंडियन मिनिएचर' जो फ्रांसिस ब्रूनेल द्वारा लिखी गई है,[४८] में सन् १७२० ई० का डेकन से लिया हुआ एक सांगीतिक दृश्य अंकित है। इसमें भी दो स्त्रियां एक खड़ी होकर एवं एक बैठकर सितार जैसा वाद्य बजाती दिखायी गई हैं। इसमें चार खूंटियां तथा चौदह तांत के परदे भी लगे हैं (चित्र संख्या ७)।

इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी की एक राजपूत चित्रकारी में भी मुगल दरबार की एक संगीतकार युवती को सितार जैसा वाद्य, जिसमें चार खूंटियां हैं, बजाते हुए चित्रित किया गया है। यहां इसे तंबूरे के नाम से संबोधित किया गया है।[४९] (चित्र संख्या ८)।

'इंडियन पेंटिंग फॉर ब्रिटिश' नामक पुस्तक में सन् १७७० ई० से सन् १८८० ई० के बीच की लघु चित्रकारियों का संग्रह कियागया है।[५०] इस पुस्तक में एक युवती सितार बजाती हुई दिखायी गयी है जिसमें सोलह परदे एवं चार तार हैं तथा तरबें नहीं हैं। (चित्र संख्या ९)।

इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक की ऊपर बताई गयीं विभिन्न लघु चित्रकारियों को देखकर, यह पूर्णत: कहा जा सकता है कि यह वाद्य

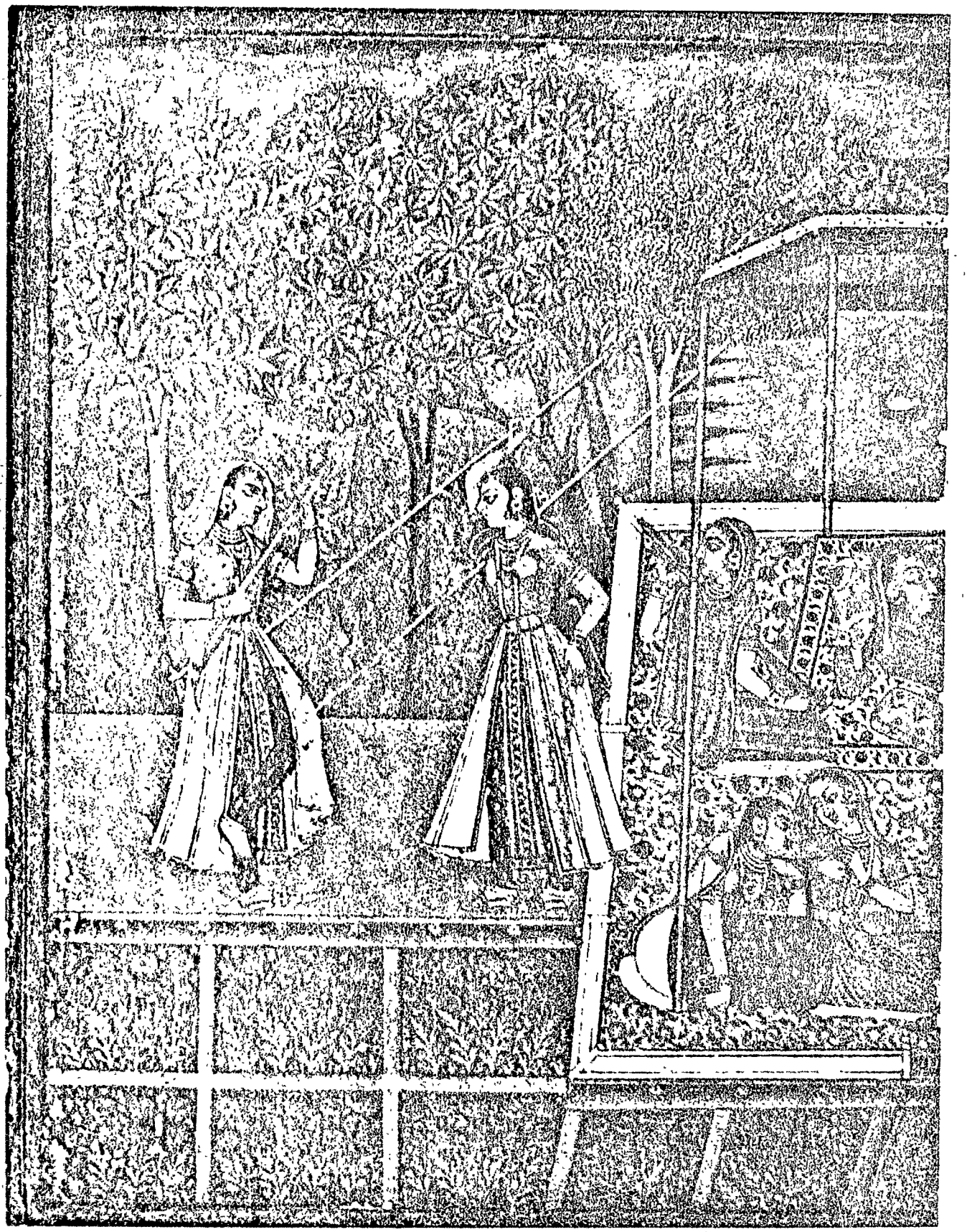

चित्र संख्या 7

चित्र संख्या 9

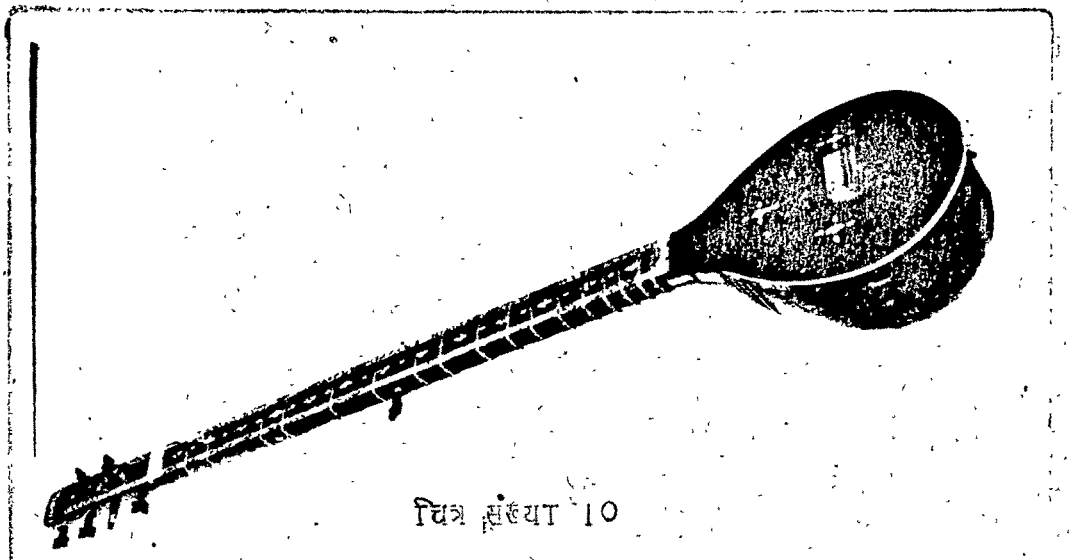

चित्र संख्या 10

अरब होता हुआ पश्चिम में पहुंचा । यह वास्तविकता ऐतिहासिक तौर पर खोजी एवं परखी जा चुकी है ।[५२] बेबीलोनियन तथा सुमेरियन की ल्यूटों में दो तार होते थे तथा संभवत: कोई परदा नहीं था ।[५३] सुमेरियन संस्कृति तीन मिलियन बी०सी० तथा बेबीलोनियन संस्कृति दो मिलियन बी०सी० पुरानी है ।

भारत में भी दो तारों वाली ल्यूट का वर्णन मिलता है जिस पर दो "टैट्राकोर्डों" के स्वरों को बजाया जा सकता था । इन तारों को स एवं प (मन्द्र पंचम) में मिलाया जाता था । वैदिक ल्यूटों के निम्न भाग होते थे, शिरस, उदर, अम्मना (तूंबा), डांड, तंत्र और वादना (कोण) ।[५४] परन्तु पर्शियन ल्यूटों का इतिहास सबसे प्राचीन है ।

पर्शियन ल्यूट इजिप्ट में लायर के साथ गयीं । लायर को सिमिटिक में कन्नर, हेब्रियू में किन्नौर, अरब में किन्नरा तथा कोप्टिक में जिनिरा कहा जाता था । यह ल्यूट ईजिप्ट में छोटे आकार के ड्रम के साथ आयी तथा ऐसा लगता है कि इसे सिर्फ महिलाएं ही बजाती थीं । यह लकड़ी की बनी होती थी तथा इसका तूंबा अण्डाकार होता था जिसमें से एक डांड निकली होती थी । अण्डाकार तूंबे के ऊपर एक खाल मढ़ी होती थी, यह तबली का काम करती थी । जो ल्यूट ईजिप्ट की नहीं थीं, उनमें से डांड अण्डाकार आकृति वाले तूंबे से आरपार निकली होती थी, जैसी पर्शियन सितार की आकृति होती है (चित्र संख्या १) । ईजिप्ट की ल्यूटों में डांड तूंबे के अन्दर ही खत्म हो जाती थी, जिसे अन्दर सहारा देने के लिए लकड़ी के दो आड़े टुकड़ों से तूंबे के अन्दर जोड़ दिया जाता था । खाल की तबली के ऊपर तिकोना या गोलाकार छेद करके तारों का एक किनारा तूंबे के अन्दर बांध दिया जाता था तथा तारों का दूसरा छोर डांड के ऊपरी भाग में चमड़े के धागों से बंधा होता था । इस वाद्य में तारों की संख्या मुख्यत: दो ही हुआ करती थी परन्तु

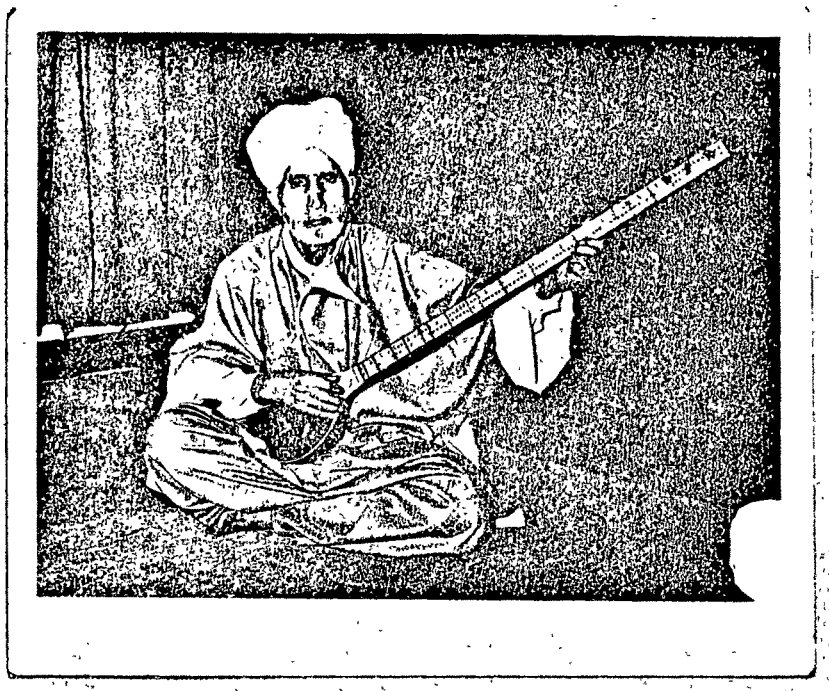

चित्र संख्या 11

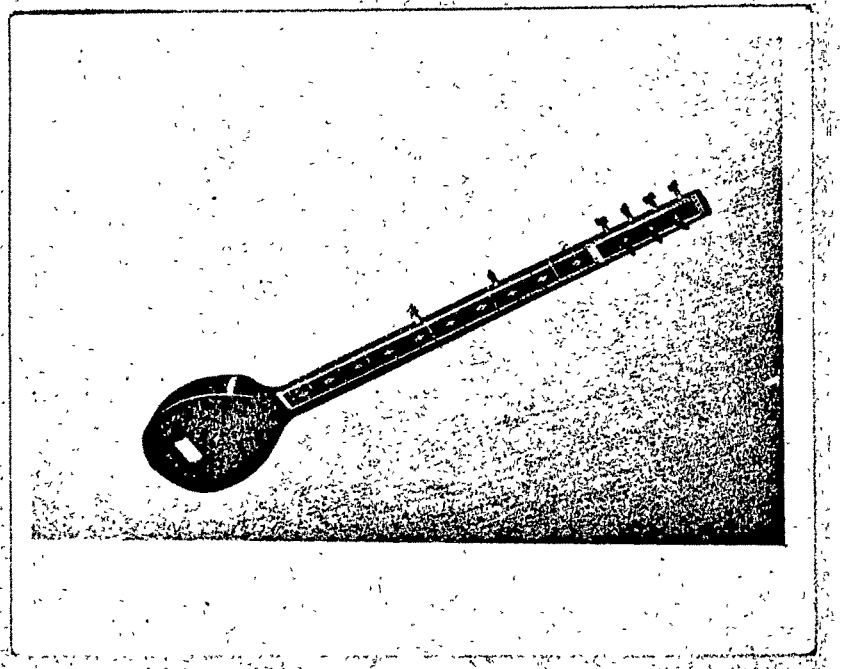

चित्र संख्या 12

जाने वाले अठारहवीं शताब्दी के कश्मीरी सितार दर्शाए गये हैं[५६-६१]। ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि यह सब वाद्य मुख्यत: एक ही प्रकार के हैं। जैसे कि इनमें तारों की संख्या 'नौ' है, आकृति एक समान है, तांत के परदे हैं तथा परदों की संख्या भी समान है। यहां तक कि कुछ वाद्यों में तूंबे एवं डांड पर बनी नक्काशी भी समान है। इसी प्रकार ११ तारों वाला सितार गुजरात के लोकवाद्यों में भी पाया जाता है।[६१] (चित्र संख्या १४)। इन लघु चित्रकारियों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रमुख सितार भारत में अठारहवीं शताब्दी से पहले ही आ गया था। (जैसे अठारहवीं शताब्दी तक कश्मीरी सितार में भारतीयता की पूर्ण झलक आ चुकी थी)।

दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्रों में ध्रुपद तथा ख्याल शैली का बोलबाला तथा वीणा का वाद्यों में सर्वोच्च स्थान होने से प्रमुख सितार की वादन शैली में अकस्मात ही अनेक परिवर्तन आ गए अत: इसकी वादन शैली पूर्णत: भारतीय हो गयी। लोकवाद्यों में यह सितार जहां भी प्रयोग किया गया, वहां इसमें भारतीयता की छाप तो आगई, परन्तु इसकी वादन शैली में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं आया। इसीलिए विभिन्न लोक-वाद्य सितारों में सिर्फ तारों की संख्या में ही वृद्धि हुई।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि सितार की उत्पत्ति पर्शिया में हुई तथा इसका विकास तीन विभिन्न रूपों में हुआ -- प्रथम, प्राचीनतम पर्शियन सितार जो गायन की संगत के लिए प्रयोग में लाया जाता था। इसमें समय के साथ कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

द्वितीय, इसी पर्शियन सितार का थोड़ा सा विकसित रूप जिससे तरबदार दोतारा, रावणहत्था एवं साज़-ए-कश्मीर वाद्यों का उद्भव हुआ।

तृतीय, यह पर्शियन सितार ईजिप्ट तथा अफगानिस्तान होता हुआ तेरहवीं शताब्दी में तंबूर के नाम से भारत आया, यहां यह मुख्य सितार तथा लोकवाद्य के सितारों (जैसे कश्मीरी सितार, कर्नाटक सितार एवं देसी सितार) के रूप में विकसित हुआ ।

इस प्रकार प्रमुख सितार एक ऐसा वाद्य बन गया, जिसका शरीर तो अभारतीय है, (पर्शियन) परन्तु आत्मा (वादन शैली) पूर्णत: भारतीय ही है । क्योंकि भारत में ही सितार के, तारों की स्थिति में परिवर्तन, चपटे ब्रिज का प्रयोग, परदों की व्यवस्था, जवारी का प्रयोग तथा भारतीय वाद्य एवं गायन से ली गयी वाद्य - प्रणाली द्वारा, कलेवर को पूर्णत: बदल दिया गया जिसके कारण आज बहुत से संगीतशास्त्री एवं शोधकर्ता इसे विदेशी वाद्य मानने से कतराते हैं । इस प्रकार यह विदेशी चोला पहने हुए एक भारतीय वाद्य बन चुका है ।

ग्रंथ एवं ग्रंथकारों की सूची

१. प्यारेलाल श्रीमाल, संगीत पत्रिका, अक्टूबर, १९८४, पृष्ठ ६० ।

२. N. Augustus Willard, on the Music of India, 1834, Page 65.

३. तीसरी से सातवीं शताब्दी ए०डी० में बाहर से आए हुए राजाओं के सिक्के । राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता ।

४. इस सम्बन्ध में पिछले भाग में कई लेखों का वर्णन किया जा चुका है ।

५. 'शाहजहांनामा' में इसका कई स्थानों पर उल्लेख है ।

६. राजेन्द्रप्रसाद तिवारी, संगीत पत्रिका, मई १९६१, पृष्ठ ४६ ।

७. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १९२५, पृष्ठ २२७ । (उर्दू भाषा में स्वयम् अनुवादित) ।

८. H. A. Popley, The Music of India, 1921, Page 110.

९. Mohammed Wahid Mirza, Life and works of Amir Khusrau 1935, Chapter I, Page 3.

१०. रशीद मलिक, हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसीक़ी, १९७५, पृष्ठ १४५-१४७, (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

११. आचार्य बृहस्पति, संगीत पत्रिका, अप्रेल १९७७, पृष्ठ ५ ।

१२. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, १९७६, पृष्ठ ३४५-३४६ ।

१३. रामावल्लभ मिश्र, संगीत पत्रिका, जून १९७८, पृष्ठ ४४ ।

१४. Allyn Jane Miner, Hindustani Instrumental Music in the early Modern period. A study of the Sitar and Sarod in 18th and 19th Centuries, B.U.U. 1981.

१५. नातकर ने पूना ज्ञान समाज के सम्मुख १८८४ में एक लेख पढ़ा ।

१६. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १९१६, पृष्ठ २६ ।

१७. लक्ष्मीदत्त राय जोशी, संगीत शास्त्रकार व कलावंत, १९३४, पृष्ठ २५० ।

१८. William Irvine, Later Mughals, 1971, Vol. I, Page- 193.

१९. दरगाह कुली खां, मीरात देहली, १७३९, पृष्ठ ५६ (पर्शियन भाषा में, स्वयम् अनुवादित) ।

२०. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १९२५, पृष्ठ २३९-२४०, (उर्दू भाषा में, स्वयम् अनुवादित) ।

२१. Ali Akbar Dekshoda, "Loghat-Nama"-Encyclopedia Fonde par Sous la direction de Mohammed Moin (1879-1956), Tehran University, Series No. 83, May 1963, Page 293 (IIIrd Col.)

२२. ...do... Page 296 (IInd Col.)

२३. ...do... Series No. 35, Page 323 (Ist Col.)

२४. ....do....

२५. शिहाब सरमदी साहब, साक्षात्कार, अलीगढ़, अप्रेल १९८४ ।

२६. Egon Wellen, The New Oxford History of Music Vol. I, Chapter IV.

२७. शिहाब सरमदी साहब की सहायता से प्राप्त ।

२८. Shabib Sarmadi, Indo Iranian studies presented for the Golden Jubilee of the Palla Vidyanasty of Iran, Indo-Iran Society, New Delhi.

२९. शिहाब सरमदी साहब की सहायता से प्राप्त ।

३०. अरहामुद्दीन, नग्मतुल अजायब (पर्शियन भाषा में, स्वयम् अनुवादित) ।

३१. C.R. Day, The Music and Musical Instruments of Southern India and the Deccan, 1891, Page, 118, 121, and 131.

३२. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, (शिहाब सरमदी साहब की सहायता से प्राप्त) ।

३३. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर ।

३४. कल्लिनाथ, संगीत रत्नाकर की टीका, वाद्याध्याय, पृष्ठ २४८ ।

३५. अबुल फ़ज़्ल, आइने अकबरी, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४ ।

३६. C. R. Day, The Music and Musical Instruments of Southern India and the Deccan, 1891, Page-123.

३७. अब्दुल वाहिद बिलग्रामी, हक़ायके हिन्द , १५५६, पृष्ठ ३५ ।

३८. A. H. A. Shurterey, Outlines of Islamic Culture Vol. I, 1938, Page 321

३९. सवाई प्रतापसिंह देव, राधागोविंद संगीत सार ।

४०. Vira Kubickova, Persian Miniatures, Photographs by Werner Forman, Trans. by R. Finlayson- Samsour, Spring Books, London Czeckoslovakia, Page II.

४१. .....do..... Page 59.

४२. Stuart Cary Welch, Imperial Mughal Paintings, 1978, Page 109.

४३. .....do.....Page 110.

४४. M. S. Randhawa, Kangra Painting on Love, 1962, Page 103.

४५. Miniature Paintings, A Catalogue of the exhibition of the Sir Moti Chand Khajanchi, 1960, Figure- 103.

४६. Kangra Valley Paintings, The Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting , Govt. of India Page, 11. (Plate 15.)

४७. Miniature Painting. A Catalogue of the exhibition of the Sir Moti Chand Khajanchi, 1960, Fig. 31.

४८. Francis Brunel, The Splendour of Indian Miniature, 1978, Page 114.

४९. Ravi Shanker, My Music My life, 1968, Page 60.

५०. Mildrad And W. G. Archer, Indian Painting for the British (1770-1880) 1955, Plate No. 12.

५१. B. C. Deva, In Bhartiya Sanskriti, 1983, IInd Part, Page 143.

52. See Tayler, The classical Heritage of the Middle Ages page 340; Emil Nauman, 'Histary of world Music, 1.,228.

Alse there is the testimony of the Sasmid Art which clearly delineats a stringed instrument somewhat of the type of sitar, see in Dalten, 'Treasures of the Oxces, 190; and iqdal-Farid, (III), 181 (With the help of Shahib Sarmadi).

53. C. Sachs, the History of Musical instruments, 1940, page 102.

54. P. Sambamoorthy, in Music East & West, 1966, page 29.

55. A Buchner, Music Instruments through the Ages, Eng. Trans. by I-Unwin, Plate 68.

56. C. Sachs, The History of Musical Instruments, 1940, Page 218.

57.............do-........, Page 257.

58. B.C. Dewa, Musical Instruments of India, 1978, page 163-169.

59. Kelkar Musimum, Poona.

60. National Musimum, Delhi.

61 Sangeet Natak Akadmmi, Delhi.

(ग) सितार का क्रमिक विकास

पिछले भाग में सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रमाणों के आधार पर तर्कपूर्ण विवेचन करने के पश्चात् यह सिद्ध किया जा चुका है कि सितार मूलत: एक पर्शियन वाद्य है। इसका स्रोत पर्शिया अवश्य है परन्तु इसके पश्चात् भारत में इस वाद्य में जो परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए हैं, उनका क्रमिक रूप से विकास कहां, कैसे एवं कब हुआ ? इन सब समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास इस भाग में किया गया है। पर्शिया का होते हुए भी इस वाद्य के बाह्यावरण में इतने अधिक परिवर्तन हो गए हैं कि इस वाद्य को पर्शिया का कहना अथवा मानना सहज प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में गहन तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रबल साक्ष्यों को सम्मुख रखकर ही निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

अनेक शोधकार्यों में सामान्यत: सितार की उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी में अकस्मात हुई बतलाई गयी है। जबकि यह नैतिक विधान है कि कोई भी चीज़, चाहे वह जड़ हो या चेतन, जीव हो या निर्जीव, उसका विकास क्रमिक रूप से ही होता है। उदाहरणत: कह सकते हैं कि फूल खिलाने के लिए पहले बीज बोना, पेड़ निकलना, कली फूटना आदि अनिवार्य है तथा उसके पश्चात् ही फूल खिलना संभव है। इस आधार पर चिन्तन करने के उपरान्त यह मानना असम्भव है कि सितार अकस्मात ही अठारहवीं शताब्दी में सामने आ गया। सितार को अठारहवीं शताब्दी वाले स्वरूप को प्राप्त करने के लिए भी काफी समय लगा तथा उसे अपने कई रूप बदलने पड़े, जिनका कि इस भाग में वर्णन किया जा रहा है।

प्रारम्भिक पर्शियन सितार गाने के साथ एक संगति वाद्य के रूप में बजाया जाता है। इसका वर्णन आठवीं से तेहरवीं शताब्दी के कई पर्शियन उल्लेखों में मिलता है।[१] इसमें एक प्यालानुमा खोल तूंबे का काम करता है जो ऊपर खाल से मढ़ा होता है। एक पतली व लम्बी डांड इस तूंबे के आर-पार निकली होती है जिसके ऊपरी भाग में तार बांधने के लिए तीन खूंटियां बंधी होती हैं। इस वाद्य में परदों का प्रयोग नहीं होता तथा ब्रिज लम्बवत होता है जो कि ईरानी वाद्यों की विशेषता है (चित्र संख्या १)।

छठी से सातवीं शताब्दी में बरबत नामक गायक खुसरो परवेज के दरबार में इस सिता, सितें या सितार को बजाते हुए गायन करता था तथा नकीसा चांग पर उसका साथ दिया करता था। तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो को सितार का प्रणेता मानने का भ्रम उपर्युक्त एवं अमीर खुसरो (तेरहवीं शताब्दी) द्वारा कहे गए कथनों में साम्यता के कारण ही हुआ। सन् १८३१ ई० की लिखी एक पर्शियन पुस्तक[२] में दिए गए चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पुस्तक (जो कि अमीर खुसरो को सितार के साथ जोड़ने वाली प्रथम पुस्तक है) का लेखक अमीर खुसरो को इसी प्रारम्भिक सितार से संबंधित बताता है जबकि इसके बाद वाले लेखकों (कैप्टेन विलर्ड तथा अन्य अनेक लेखक) ने अमीर खुसरो को प्रमुख सितार से भ्रमवश जोड़ दिया।

प्रारंभिक सितार बाद में अफगानिस्तान में दोतार के नाम से काफी प्रचलित हुआ जबकि इसमें तीन तार थे।[३] यह वाद्य अफगानिस्तान से भारत आया तथा इस वाद्य का भारत में कई प्रकार से विकास हुआ जो कि कई लिखित उल्लेखों से स्पष्ट होता है। सर्वप्रथम इस वाद्य का उल्लेख सन् १८३१ ई० में पर्शियन भाषा में लिखित पुस्तक में किया गया है।[२] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि 'दोतारे' को

पर्शियन में सितार बोला जाता है। इसी प्रकार सन् १८९१ ई० में सी०आर० डे ने अपनी पुस्तक में पर्शियन सितार का भी यही चित्र दिया है[४] (चित्र सं० १) जबकि सादिक अली खां द्वारा रचित 'सरमाय: इशरत' नामक उर्दू ग्रन्थ (सन् १८८४ ई०) में 'दोतार' नामक वाद्य की जो तस्वीर दी गयी है, उसमें भी डांड का निचला भाग तूंबे के बाहर निकला हुआ है, परन्तु पर्शियन सितार की अपेक्षा उसकी लम्बाई कम हो गयी है।[५] इसी पुस्तक में एक मारवाड़ी आदमी को दोतारा बजाते हुए दिखाया गया है तथा यह बताया गया है कि यह वाद्य मारवाड़ में बहुत प्रचलित है। इसको बनाने की विधि के संबंध में सादिक अली खां लिखते हैं कि एक आधे नारियल, जिसके ऊपरी भाग पर खाल मढ़ी है, के खोल में एक लकड़ी लगी है जो कि डांड का काम करती है। डांड के ऊपरी भाग पर तीन खूंटियां बंधी हुई होती हैं (चित्र सं० १५)। इसी पुस्तक में एक अन्य 'दोतारे' का चित्र भी अंकित किया गया है जिसमें उपर्युक्त वर्णित दोतारे के अतिरिक्त सात तरबें भी लगी हुई हैं।[५] इसके लिए लेखक ने तारों को मिलाने की विधि भी दी है, जो निम्न है -- 'अव्वल नम्बर के बालों को खेंचकर किसी मुक़ाम पर कायम करो, फिर दूसरे नम्बर के बालों को खेंचकर उसकी आवाज़ में बाहम मिला लो कि ये जोड़ा कहा जाता है। फिर तीसरे नम्बर के बालों को खेंचकर उनके निसब मिला लो।' आगे इस सितार को बजाने की विधि भी लिखी है -- 'बमोकाम क़ाते के बालों पर उंगलियां रखकर सप्तक रमां करो और जो लहरे कमांचा, ताऊस, सारंगी और सारंदा के वास्ते बयान किये हैं वो बजाओ। अव्वल आसान-आसान चीजें निकालो और रमा करो। खूब मश्क़ हासिल हो तो गाने वाले की संगत करो लेकिन याद रखो इसमें मुश्किल राग-रागनियां नहीं बज सकती हैं। यह साज़ शरीफों को बजाते न देखा - बंजारों को देखा है।'[५]

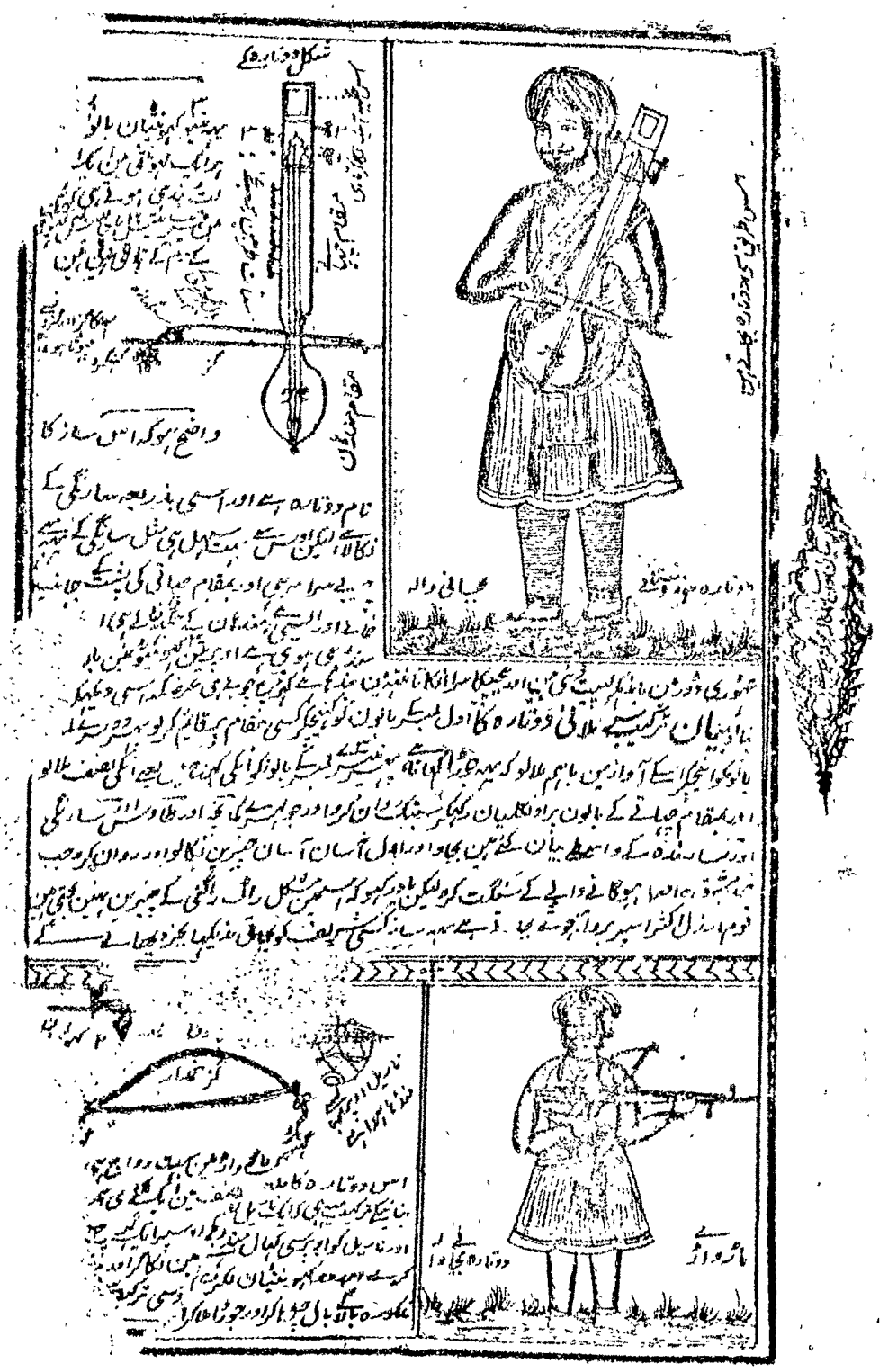

चित्र संख्या 15

इस व्याख्यान से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वाद्य लोक संगीत में गाने की संगति के लिए प्रयोग किया जाता था तथा इस पर शास्त्रीय संगीत बजाना मुश्किल था। 'सरमाय: इशरत' में दिए गए दोनों 'दोतारा' वाद्यों के वर्णन से इस प्रकार के वाद्य में विकास की झलक मिलती है। जैसे कि 'दोतारे' की तूंबे से नीचे निकलने वाला भाग छोटा होता जा रहा है तथा तरबों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया है। गुजरात में आज भी बिना तरबों वाला 'दोतारा' सारंगा के नाम से प्रचलित है जिसे गुजरात के बंजारों द्वारा लोक संगीत गाने के लिए ही प्रयोग किया जाता है।[६] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि जितने भी 'दोतारा' वाद्यों का यहां उल्लेख किया गया है, सभी में तीन तार हैं।

एक अन्य वाद्य 'रावण हत्था' गुजरात तथा राजस्थान के लोक वाद्यों में काफी प्रचलित है। यह वाद्य 'दोतारे' का ही विकसित रूप जान पड़ता है क्योंकि इसका आकार बिल्कुल दोतारे की तरह ही है जबकि इसमें छह तार तथा एक चिकारी का तार है। इसमें तरबें भी मिलती हैं। इस पर लोकधुनें बजाने के अतिरिक्त विभिन्न राग व रागिनियां भी बजाई जा सकती हैं।[७] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'दोतारा' शास्त्रीय संगीत के लिए ज्यादा उपयोगी नहीं है तथापि इसके विकसित स्वरूप 'रावण हत्था' पर शास्त्रीय संगीत बजाया जा सकता है। इस वाद्य के नाम का सहारा लेकर इसके आविष्कार के बारे में अनेक किंवदन्तिया प्रचलित हैं।[८] परन्तु यह मात्र किंवदंती ही हैं -- उनमें सत्यता का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

इसी श्रेणी में कश्मीर का एक लोक वाद्य साज़-ए-कश्मीर भी आता है, जो सूफियाना क़लाम के लिए प्रयोग किया जाता है।[९] इसमें भी प्याले के आकार के शेतूत की लकड़ी के तूंबेनुमा भाग को खाल से मढ़ दिया जाता है जिसमें से एक फुट लंबी

व मोटी लोहे की डांड आर-पार होती है। तूंबे के ऊपर तथा लोहे की डांड के चारों तरफ दो फुट लम्बी खोखली लकड़ी का आवरण होता है जिसमें मुख्य तीन तार होते हैं एवं तरबों के लिए सात दाएं तथा सात बाएं तरफ खूंटियां लगी होती हैं। इन तरब के तारों को `नज़ीरा` कहते हैं। इसमें मुख्य तार सिल्क का होता है जो पंचम में मिलाया जाता है, दूसरा तार तांत का होता है तथा षड्ज में मिलाया जाता है, तीसरा तार पीतल का होता है जिसे निषाद में मिया जाता है। तरब के तार सातों स्वरों में मिलाए जाते हैं (चित्र सं० १६)। इसी प्रकार का एक वाद्य विलियम ब्रिज वाटर ने अपनी `एनसायक्लोपीडिया` में चित्रित किया है तथा लिखा है कि यह मुस्लिम और पूर्वी देशों में काफी प्रयोग होता है।[१०]

अक्टूबर एवं नवम्बर सन् १९१० ई० तथा जनवरी सन् १९११ ई० में प्रकाशित `म्यूज़िक गज़ेट आफ इंडिया` के अंकों में इस सितार को चित्रित एवं वर्णित किया गया है जहां इसके एक अलग विकास की झलक मिलती है। इस वाद्य में तारों की संख्या तीन से पांच बतलाई गयी है जबकि मुख्य तार तीन ही बतलाए गये हैं। इस वाद्य में परदों की भी व्यवस्था है।[११]

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रारम्भिक पर्शियन सितार, जिसे अफगानिस्तान में `दोतारा` कहा जाता है, वह इन दोनों नामों से भारत के लोक संगीत में प्रचलित रहा। यह वाद्य गाने की संगति के प्रयोग में आता रहा तथा कहीं पर इसके तूंबे के निचले भाग से निकलने वाली डांड छोटी हुई, कहीं बांस की डांड की बजाय लोहे की डांड लगी, कहीं तारों की संख्या में वृद्धि हुई, कहीं तरबें लगीं तथा कहीं इस पर परदों की व्यवस्था की गयी परन्तु इसके मूल आकार में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। आज यह वाद्य भारत के विभिन्न प्रांतों में लोक संगीत में पूर्णतः अपना स्थान बना चुका है।

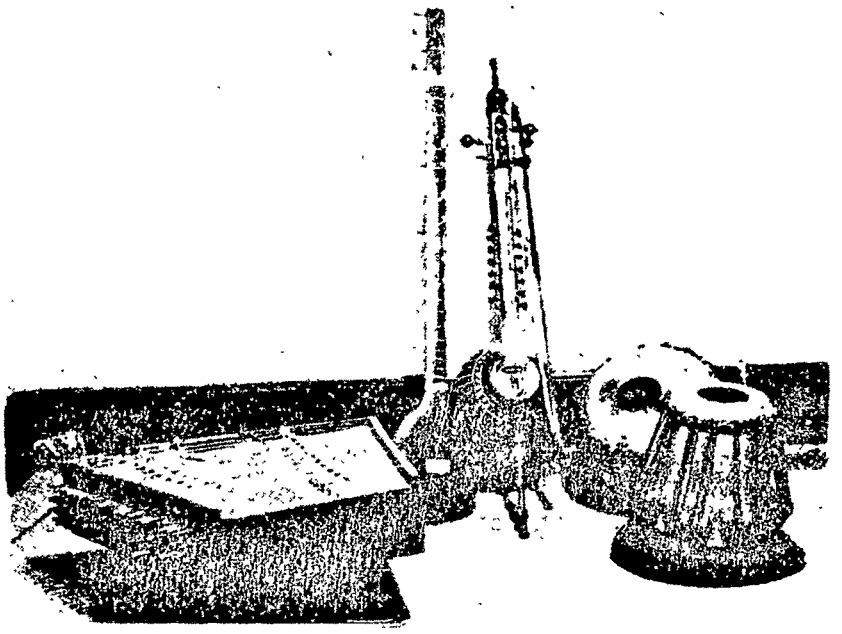

चित्र संख्या 16

इस प्रारंभिक सितार के इजिप्ट में जाने पर, लिखित उल्लेखों के अनुसार, परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं -- जैसे कि तूंबे के निचले भाग में से जो डांड बाहर निकली होती थी, वह काट दी गयी तथा उसे तूंबे के अन्दर ही खत्म कर दिया गया। यह वाद्य लकड़ी खोदकर भी बनाया जाने लगा।[3] पर्शियन जहां इस वाद्य को तार के नाम से पुकारते थे, अरबियों में इसे तन्बूर कहा जाता था। यह वाद्य अफगानिस्तान में तंबूर के नाम से प्रचलित रहा[3] तथा भारत में तेरहवीं शताब्दी में आया क्योंकि इस वाद्य का उल्लेख अमीर खुसरो ने अपनी वाद्यों की सूची में किया है जबकि 'संगीत रत्नाकर' तक इस वाद्य का उल्लेख भारत में नहीं मिलता।[१२] इसके बाद 'आइने अकबरी' में भी चार तंबूर वादकों का, जो अकबर के दरबार में थे, उल्लेख मिलता है।[१२] तंबूर वादकों की यह संख्या इस बात का द्योतक है कि यह वाद्य उस समय काफी प्रचलित था। अबुल फ़ज़ल ने इन सब तंबूर वादकों को पर्शियन वाद्य बजाने वालों की सूची में रखा। यह सब तंबूरची पश्चिमी एशिया के निवासी थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह तंबूरची अपने वाद्य पर पर्शियन संगीत तो बजाते ही होंगे, परन्तु अकबर के भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव से ऐसा प्रतीत होता है कि इस वाद्य पर एवं इस वाद्य की वादन शैली पर कुछ न कुछ भारतीय संस्कृति का समीकरण भी किया जा रहा होगा।

दक्षिण में बीजापुर के महाराज इब्राहीम आदिलशाह (सन् १५८० से १६२७ ई०) एक बहुत ही मशहूर तंबूर वादक थे। यह अकबर व शाहजहां के समकालीन थे तथा साथ ही साथ एक मशहूर ध्रुपद गायक भी थे। इन्होंने अपने हीरों से जड़े तंबूर का नाम 'मोती खां' रखा तथा उसकी स्वयं रचित कई कविताओं में प्रशंसा की। यहां तक कि उनके दरबारियों ने भी इसका काफी उल्लेख किया है। एडीटर नज़ीर अहमद किताब-ए-नौरस के परिचय में लिखते[१३] हैं कि 'इब्राहीम आदिल शाह

ध्रुपद के काल के हैं जबकि ध्रुपद अपने पूर्ण उत्कर्ष काल पर था जिसमें तानसेन ने काफी योगदान दिया। राजा जहांगीर तथा उस समय के कई संगीतकारों ने इब्राहीम आदिल-शाह को उनके समय का बहुत बड़ा ध्रुपदिया माना है जिसने कि न सिर्फ ध्रुपद को प्रचलित किया बल्कि ध्रुपद में अपना अलग से योगदान भी दिया। प्राचीन ध्रुपद के चार भाग स्थाई, अन्तरा, संचारी तथा आभोग होते थे। परन्तु इब्राहीम आदिल शाह की रचनाओं में सिर्फ तीन भाग ही थे -- स्थायी, अंतरा और आभोग। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि ख्याल, जो कि बाद के काल में काफी प्रचलित हुआ, में दो भाग स्थाई एवं अन्तरा ही होते हैं। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि सुल्तान इब्राहीम की ध्रुपद रचनाएं ख्याल गायकी की उत्पत्ति से पहले की स्थिति थी।[13] इस प्रकार नज़ीर अहमद ने यह पूर्णत: प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि इब्राहीम आदिलशाह के समय ध्रुपद से ख्याल की ओर झुकाव की प्रवृत्ति थी। क्योंकि वह एक मशहूर तंबूर वादक भी थी जिसके वादन की प्रशंसा अकबर तथा जहांगीर भी करते थे, अत: यह विचारणीय है कि वह तंबूर पर ऐसी कौन सी खास चीज बजाता था जिससे उसकी इतनी अधिक प्रशंसा हुई। अगर वह तंबूर आधुनिक तंबूर के समान केवल छेड़कर स्वर देने के काम आने वाला एक वाद्य था तो उसके वादन में कोई खास बात नहीं हो सकती जिसकी कि इतनी अधिक प्रशंसा की जाय। इससे ऐसा जान पड़ता है कि उसके तंबूर में तांत के परदे लगे होंगे जिससे कि यह उस पर कुछ ध्रुपद का वादन कर सकता हो। आदिल शाह इस पर्शियन वाद्य पर भारतीय वादन शैली का प्रयोग करता था, यह बात यहां आकर स्पष्ट हो जाती है।

इसी संदर्भ में सन् १५५६ ई० में लिखी एक अन्य पुस्तक में विष्णुपदों के रूप में लिखी मसनवियों में सितार का भी नाम आया है एवं उसकी बनावट पर भी प्रकाश डाला गया है।[14] जैसे कि उस समय सितार लकड़ी खोदकर ही बनाया जाता था जिस पर

परदे एवं तारों की व्यवस्था थी । इस प्रकार यह पुस्तक भी तांत के परदों वाले तंबूर पर प्रकाश डालती हुई प्रतीत होती है ।

औरंगज़ेब के समय में कश्मीर के गवर्नर फकीरुल्लाह ने पर्शियन भाषा में संगीत पर 'राग दर्पण' नामक एक ग्रन्थ लिखा जिसमें उन्होंने तीन तंबूर वादकों को वर्णित किया है । उनकी एक टिप्पणी से तंबूर पर बजने वाले संगीत के बारे में काफी जानकारी प्राप्त होती है । वे लिखते हैं कि शौकी नामक तंबूरची हिन्दी तथा फारसी दोनों ही संगीतों को तंबूर पर बहुत ही अच्छा बजाता था ।[१५] इससे इसके तंबूर में भी तांत के परदे लगे होना प्रतीत होता है ।

उपर्युक्त दिए गए प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अफगानिस्तान के तंबूर पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव इतना पड़ा कि उस पर इब्राहीम आदिल शाह से औरंगजेब के समय तक भारतीय संगीत काफी मात्रा में बजने लगा । इस संदर्भ में पिछले भाग में दी गयी सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी की कई लघु चित्रकारियां उल्लेखनीय हैं । इनमें इस वाद्य को कहीं तंबूर तथा कहीं सितार की संज्ञा दी गयी है । जो वाद्य वादन के लिए प्रयोग होता था, उसमें तांत के परदे लगे हुए प्रतीत होते हैं तथा जो गायन में स्वर देने के लिए प्रयुक्त होता था, उसी पर परदे नहीं दिखलाए गए हैं । इन सब तंबूरों में चार तार स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं ।

सवाई प्रतापसिंह देव ने भी सत्रहवीं शताब्दी में अहोबल द्वारा रचित 'संगीत पारिजात' का अनुवाद करते हुए अपने ग्रंथ 'संगीत सार' में निबद्ध तंबूरे को सितार की संज्ञा दी है । इनका वर्णन भिन्न है[१६]--

" अथ तुम्बूरा नामक गंधर्व के बजायबे की वीणा को नाम तम्बूर ताको लक्षण लिख्यते ।।

याकों लौकिक में तम्बूरा कहत हैं ।। यह तंबूरा काठ का लीजिए ।।
एक ओर आधो तोंबा लगाय, वाको काठ की पतरी पटुलासों मढ़िए ।।
वहां तार लोह की लगाइए तीन वा च्यार ।
तहां एक तार स्वर के सहारे राखिए,
बाके तार एक स्वर में मिलाइके ।।
याकी धुनि में मिलि कें गान कीजिए ।।
यह तंबूरा दोय प्रकार का है ।।
एक निबद्ध ।।१।। दूसरो अनिबद्ध ।।२।।
तहां जा तंबूरा राग बरतीबे कों, स्वर के स्थान में तार बांधिए ।।
और ऊन तार को बंधन सों राग बर्तिए ।। सो निबद्ध तंबूरा जानिए ।।
या को लौकिक में सितार कहे हैं ।। और जहां तांति के बंधन नहिं कीजिए ।।
सो अनिबद्ध जानिए ।। या की धुनि में मिलिकरि राग गाइए ।।
या तुंबर वीणा को दीर्घ पणो ।। रुद्र वीणा को सो जानिए ।।
वहां दोय मूठी डांडी की ओर की ।। तोंबा ऊपर की पटुलि छोड़ि के ।।
तार के आसरे सों बिच में घोड़च राखिए ।।
और जैसों तार सुखसों बजायबे में आवे बैसो घोड़च राखिए ।।
और जहां सातु, वा पांच, वा च्यार तार होय डांडी में स्वर के स्थानक में ।।
तांति के बंधन नहीं होय ।। और सब रीति निबद्ध तम्बूरा की तरह होय ।
गायबे में स्वर की सहाय करे ।। सो अनिबद्ध तम्बूरा जानिए ।।`

इस पुस्तक में लेखक ने कुछ अपनी तरफ से भी टिप्पणी कसी है । इनके व्याख्यान से स्पष्ट हो जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में दो प्रकार के तंबूरों का प्रयोग किया जाता था तथा अनिबद्ध तंबूरे में चार या चार से अधिक तार होते थे क्योंकि

इन्होंने लोहे के तार को स्वर के सहारे रखकर बाकी के तारों को एक समान स्वर में मिलाकर गाय्न करना बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह तार 'प स स स' में ही मिलाये जाते थे, चाहे वह निबद्ध तंबूरा हो या अनिबद्ध तंबूरा। इन्होंने तंबूरे को, आधा तूंबा जिसमें डांड लगी हो, ऐसा बताया है जबकि 'संगीत पारिजात' में इसको लकड़ी से खोदकर बनाया गया वाद्य बताया गया है तथा अनिबद्ध तंबूरे की वादन शैली को इससे पहले वर्णित वीणा के समान ही बतलाया है।[१७] क्योंकि पं० अहोबल आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे तथा उनका सम्बन्ध दक्षिणी संगीत से ज्यादा रहा, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह दक्षिण में ही प्रचलित किसी प्रकार के तंबूर का वर्णन कर रहे हैं। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि सी०आर० डे ने सन् १८९१ ई०में अपनी पुस्तक में सितार के एक अन्य प्रकार, जो दक्षिण में मिलता है, का वर्णन किया है। वह इसे कर्नाटक सितार कहते हैं।[१८] उनके अनुसार इस वाद्य की आकृति तंबूरी के समान होती है तथा सितार की अपेक्षा इसकी डांड काफी पतली व छोटी होती है। इस सितार पर कहीं-कहीं वीणा के समान अचल परदे लगे हुए भी मिलते हैं।

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि पं० अहोबल अपनी 'संगीत पारिजात' में इसी कर्नाटक सितार को अनिबद्ध तंबूरे की संज्ञा दे रहे हैं। इस संदर्भ में पोपले का सन् १९२१ ई० में दिया गया कर्नाटक सितार का वर्णन काफी उल्लेखनीय है।[१९] इनके अनुसार :-- " It (Carnatic Sitar) has a much thinner and shorter neck and is shaped something like Tambur. Only the first two strings pass over the frets about half an inch wide and raised from the finger-board. These two strings are placed much nearer together than the other strings-------- Usually there are about fourteen frats, which are placed at the intervals of the diatonic scale ..... The Carnatic Sitar runs thus:

Sa Pa Sa Pa Sa Sa Sa" .

यह कर्नाटक सितार पं० अहोबल द्वारा पण्डित अनिबद्ध तंबूरे का ही विकसित रूप है क्योंकि इसके भी प्रारंभिक चार तार उन्हीं स्वरों में मिलाए हुए हैं जो कि 'संगीत पारिजात' के अनुवादक द्वारा बतलाए गए हैं। उपर्युक्त कर्नाटक सितार के बाकी तीन तार इस तंबूरे में विकास के द्योतक हैं।

पं० दीनानाथ ने सन् १७२४ ई० में 'संगीत पारिजात' का अनुवाद पर्शियन भाषा में किया है। सर डब्लू० ओसले के अनुसार पं० दीनानाथ ने अपने अनुवाद में निबद्ध तंबूरे का एक अस्पष्ट चित्र भी दिया है।[२०] इस चित्र को देखने से पता चलता है कि इसका तूंबा कुछ गोलाकार तथा डांड अविकसित हैं। इसमें चार जगह दो-दो की जोड़ी में परदे लगे हुए हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि पोपले ने भी कर्नाटक सितार पर दो-दो की जोड़ी में सात जगह (१४ परदे) परदे लगे हुए बताये हैं।[१६] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पं० अहोबल का निबद्ध तंबूरा कर्नाटक सितार की प्रारंभिक स्थिति था। निबद्ध तंबूरे के क्रमिक विकास में चार से सात तार हुए तथा दो-दो की जोड़ी में चार जगह की बजाय सात जगह परदे लगे - अर्थात् क्रमशः आठ से चौदह परदे हो गये। इस प्रकार के सितार के कई चित्र कांगड़ा की लघु चित्र-कारियों में भी मिलते हैं (चित्र सं० ६)। इनमें तारों की संख्या छह है तथा कम से कम छह जगह दो-दो की ही जोड़ी में तांत के परदे लगे हैं। इस प्रकार यह भी अहोबल के निबद्ध तंबूरे की विकसित अवस्था प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त निबद्ध तंबूरे की तरह का ही अविकसित सितार एफ० सोल्वेन्स ने सन् १८१० ई० में चित्रित किया है।[२१] यह एक बेल्जियम निवासी था जो अठारहवीं शताब्दी के अन्त में १५ साल तक कलकत्ते में रहा। सन् १७९९ ई० में इन्होंने हिन्दू परिधानादि धारण करके कई चित्र बनवाकर प्रकाशित किये जिनमें से एक चित्र एक सितार वादक का है। इसकी दूसरी प्रति सन् १८१० ई० में प्रकाशित हुई। यह सितार ऊपर दिए गए सितारों (निबद्ध तंबूरे) से काफी बड़ी आकृति का है तथा इसमें भी छह तार हैं। इसका ब्रिज लम्बवत है तथा परदों की व्यवस्था भी है। सोल्वन की टिप्पणी

के अनुसार यह सितार नृत्य की संगति के लिए प्रयोग में लाया जाता था। यह आगे लिखते हैं कि हिन्दू वादक इस वाद्य को छेड़ने से उत्पन्न आवाज़ को सुनकर ही बहुत खुश हो जाते हैं। इसकी आवाज़ को बढ़ाने के लिए वे इसमें घुंघरू बांध लेते हैं, आदि।

सोल्वन्स का यह वर्णन उस समय के किसी लोक वाद्य के बारे में जानकारी देता हुआ ही प्रतीत होता है, जिसे सितार कहा जाता था। इन सब व्याख्यानों एवं उनकी टिप्पणियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निबद्ध तंबूरा ही सितार के नाम से प्रचलित हुआ तथा जहां दक्षिण में इसे कर्नाटक सितार कहा गया, वहां उत्तरी भारत में यह सहतार या सितार के नाम से विख्यात हुआ। इस सितार का पोपले द्वारा वर्णन तथा कांगड़ा लघु चित्रकारी में दर्शाए गए तांत के परदे, जो दो-दो की जोड़ी में बंधे हुए थे, इसके विकास पर प्रकाश डालते हैं। इनका बाद में क्रमिक विकास जहां दक्षिण में वीणा के समान अचल परदों वाले कर्नाटक सितार के रूप में हुआ, (जैसाकि कैप्टेन सी०आर० डे कुछ कर्नाटकी सितारों पर दर्शाते हुए प्रतीत होते हैं) वहीं कश्मीर घाटी में तांत के परदों की संख्या में वृद्धि हुई तथा इसमें सोलह या सत्रह तांत के परदे लगे। यह वाद्य कश्मीरी सहतार के नाम से वहां के लोक संगीत में प्रचलित हुआ।[६] इसमें क्रमशः तारों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई तथा सात एवं नौ तार लगाए गए (चित्र संख्या १०-१३)। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 'संगीत सार' के अनिबद्ध तंबूरे का विभिन्न प्रान्तों की संस्कृति के अनुसार ही क्रमिक रूप से विकास हुआ।

दक्षिण में जहां वीणा का शास्त्रीय संगीत के प्रयोग में उच्च स्थान था, वहां इसे भी वीणा के समान प्रयोग करने के लिए इसके तांत के परदों को वीणा के अचल परदों की भांति ही रखा गया। इसके साथ ही कश्मीर घाटी में जहां इसे 'सूफियाना कलाम' गाने की संगति के लिए प्रयोग किया जाता था, वहां इसके तारों में वृद्धि की गयी।[२२] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि कश्मीरी सितार के प्रथम चार तार भी निबद्ध तंबूरे की तरह 'प स स स' में ही मिलाए जाते हैं तथा बाकी तारों

को भी ज्यादा आवाज करने के लिए षाड्ज में मिला दिया जाता है ।

इसी प्रकार निबद्ध तंबूरे का विकास गुजरात के आसपास देसी सितार के रूप में हुआ । इसमें ग्यारह तार होते हैं तथा सोलह या सत्तरह तांत के परदे लगे होते हैं । इसके तार कई सप्तकों के स्वरों में मिलाए जाते हैं ।[२३] इसमें भी कश्मीरी सितार की तरह मींड़ का काम नहीं हो सकता तथा यह लोक संगीत के लिए प्रयोग किया जाता है । इसके दो मुख्य तारों को पकड़कर बजाया जाता है (चित्र सं० १४) । कश्मीरी सितार एवं गुजरात के देसी सितारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कश्मीरी सितार वादकों को सितार के मूल्य का ज्ञान था जिसके कारण उन्होंने अपने सितार में सात तार रखे तथा दो चिकारियों को भी स्थान दिया जबकि गुजरात के देसी सितार में उसका अभाव दिखता है जिससे कि गुजरात के सितार में ग्यारह तारों की व्यवस्था होने पर भी चिकारी आदि की कोई व्यवस्था नहीं मिलती । इस प्रकार गुजरात के देसी सितार को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहां सितार के व्यवस्थित विकास पर ध्यान नहीं दिया गया ।

उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर तंबूर का भारतवर्ष में विपरीत दिशाओं (उत्तर, दक्षिण एवं गुजरात) में विकास क्रम स्पष्ट हो जाता है । आगे के उल्लेखों में दिल्ली, बनारस एवं उसके आसपास के विभिन्न प्रान्तों में हुए इसके विकास का विवरण दिया जारहाहै, जिसके कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत बजाने के लिये यह एक प्रमुख वाद्य बना ।

विलियम इरविन ने अपनी पुस्तक `लेटर मुगल्स` में जहांदार शाह के राज्य काल (सन् १७१२ ई० से १७१३ ई०) का वर्णन करते समय न्यामत खां को जहांदार शाह के दरबार का एक अच्छा तंबूर वादक बतलाया है,[२४] जबकि `मीराते देहली` में न्यामत

खां को एक बीन-नवाज़ और ख्यालों की रचना करने वाला बतलाया है।[२५] इस पुस्तक में एक बाक़र नामक तंबूरची की काफी प्रशंसा की गयी है।[२६] इन दोनों प्रमाणों को तथा न्यामत खां की जीवनी को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि शुरू में जहांदेर शाह के दरबार में उसने तंबूर वादक के नाम से काफ़ी ख्याति पायी तथा मोहम्मद शाह रंगीले के समय (सन् १७१६-१७४८ ई०) वह एक अच्छा बीन वादक एवं ख्याल रचयिता बन गया था। यही कारण है कि दरगाह कुली खां ने सन् १७३८ ई० में न्यामत खां को तंबूर बजाते हुए नहीं सुना।

मोहम्मद करम इमाम खां ने भी अपनी पुस्तक में एक तंबूर का वर्णन किया है। इसमें चमड़े के परदों की व्यवस्था है। इस पर लेखक ने तुलसीराम कलावंत को बीन की तरह आलाप करते देखा। यह वाद्य बहुत ही कम प्रचलित बताया गया है।[२७]

इन सब उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार के विकास का क्रम धीरे-धीरे उन्नति के शिखर पर पहुंच रहा था तथा इसके विकास में न्यामत खां एवम् उसके बाद के कलाकारों ने काफी सहयोग दिया। इसका प्रमाण `मीराते देहली` में दिए गए न्यामत खां के भाई के वर्णन से भी स्पष्ट होता है।[२८] इसमें लिखा है कि `न्यामत खां के भाई चार-चार घण्टे बजाते थे। यह सेहतार बजाने में इतने निपुण थे कि इन्होंने इसे बजाने का नया तरीका निकाला था जो चीज बड़े-बड़े तंत्र वाद्यों पर बजती थी, वह उससे बढ़िया अपने सहतार पर बजाते थे। यह संसार का बहुत बड़ा आश्चर्य था - - - इत्यादि।`

दरगाह कुली खां के इस उल्लेख से दो बातें स्पष्ट होती हैं -- प्रथम तो यह कि उस समय तंबूर पर चार तारों में से तीन तारों का भी प्रयोग किया जाने लगा था क्योंकि इस समय सितार की वादन शैली का परिष्करण किया जाने लगा था। पहले सितार की अपनी कोई पृथक वादन शैली नहीं थी तथा यह वाद्य केवल गाने की

संगति अथवा लोक संगीत के लिए ही प्रयोग किया जाता था, परन्तु अब इसका क्षेत्र विस्तृत होने लगा तथा इसमें घसीट एवं एक से अधिक सप्तकों में वादन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके कारण इसके तीन तारों को व्यवस्थित कर, वादन शैली को परिष्कृत किया गया। इसमें पहले चार तारों का प्रयोग किया जाता था जो कि `प स स स` में मिलाए जाते थे, परन्तु `प` के बाद के तीनों तार समान स्वर में केवल आवाज उत्पन्न करने के लिए ही लाए जाते थे। तीन समान षड्जों की ज़रूरत न होने के कारण उसमें से एक षड्ज को निकाल दिया गया। दरगाह कुली खां के समय में तीन तार वाले (सहतार) वाद्य को मिलाने की विधि में भी परिवर्तन आया होगा, जैसाकि इसके बाद लिखी केप्टेन विलर्ड की एवं सभी पुस्तकों में सितार को मिलाने की विधि इस प्रकार दी गयी है -- पहला तार मन्द्र मध्यम में, दूसरा व तीसरा तार मन्द्र षड्ज में मिलाया जाय।` [२६] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि `मीराते देहली` का वह सहतार वाद्य भी `मध्यम, षड्ज, षड्ज` इसी प्रकार मिलाया जाता था। इस समय में तारों की संख्या में कमी का एक मुख्य कारण यह भी रहा होगा, कि इस समय के वाद्यों की डांड काफी पतली हुआ करती थी तथा अगर उस पर तारों की संख्या कम न की जाए तो डांड पर तार पास-पास हो जायेंगे तथा एक तार से दूसरे व तीसरे पर वादन करने में सफाई नहीं आयेगी एवं बजाने में कठिनाई होगी। जैसाकि दरगाह कुली खां ने इस वाद्य के वादन के विषय में लिखा है, कि `एक राग से दूसरी रागिनी निकालते, एक परदे से दूसरे परदे पर जाते कहीं भी आवाज नहीं होती। बजाते-बजाते गाने लगते हैं, इतना प्रभावशाली बजाते हैं।` [२८]

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि इस समय यह वाद्य गायन की संगति के लिए कम तथा वादन शैली के प्राधान्य से ही परिपूर्ण हो रहा था।

`मीराते देहली` में `सदारंग` का वर्णन होना (यह नाम न्यामत खां ने देहली दरबार को, मोहम्मद शाह रंगीले से कुछ अनबन होने के कारण, छोड़ने के बाद रखा था तथा सदारंग - अदारंग नामों से ख्यालों की रचना की थी।) तथा `अदारंग` का उल्लेख न करते हुए न्यामत खां के भाई का वर्णन करना यह दर्शाता है कि दरगाह कुली खां `अदारंग` के बारे में ही वर्णन कर रहे हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि `अदारंग` ने सितार की वादन शैली को परिवर्तित करने में एक मुख्य भूमिका निभाई। कुछ गुणीजन जो `मीराते देहली` में वर्णित न्यामत खां के भाई को खुसरो खां कल्पित नाम देते हैं[30] (जिसका इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है) तथा बताते हैं कि क्योंकि खुसरो खां किसी दरबार से सम्बन्धित नहीं थे तथा सूफी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे इसलिए किसी लिखित साहित्य में इनका नामोल्लेख नहीं है, वह यह मानने से इनकार नहीं कर सकते कि मसीत खां भी किसी दरबार से संबंधित नहीं थे, परन्तु इनके नाम एवं वादन शैली को उन्नीसवीं शताब्दी के सभी संगीतकारों एवं संगीतशास्त्रियों ने वर्णित किया है। इस प्रकार अगर खुसरो खां नामक कोई व्यक्ति होता तथा उसने किसी सितार जैसे वाद्य का आविष्कार किया होता या उसकी वादन शैली बनायी होती तो बाद के सितार वादकों में उनकी वादन शैली का जरा भी आभास क्यों नहीं मिलता, जबकि फिरोज खां एवं उनके बाद के मसीत खां को विद्वान क्रमशः फिरोजखानी एवं मसीतखानी गतों के आविष्कारक के रूप में आज भी स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त तर्क एवं `मीराते देहली` में `अदारंग` के नाम का ज़िक्र न मिलना हमें इस तथ्य के समीप ले जाता है कि `मीराते देहली` के लेखक ने जिसे न्यामत खां का भाई बताया है, वह कोई और नहीं बल्कि फिरोज खां `अदारंग` ही हैं।

इस प्रकार शनैः शनैः सितार का विकास हुआ तथा जब-जब वादकों को इसके वादन में परिष्करण हेतु आवश्यकता महसूस हुई, उनके द्वारा तब-तब उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन करके इस वाद्य की सीमाओं को वृद्धिगत किया गया। इस तरह धीरे धीरे कई प्रकार के सितार प्रचार में आए तथा उनके विकास के विषय में कुछ कहना भी दुरूह होता गया। इस वाद्य की सीमाएं इतनी अधिक फैल गयीं कि उन्हें सहज ही समझना या समझाना मुश्किल है। इसके विकास का क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त करने के लिए सितार के प्रत्येक अंग को अलग-अलग वर्णित किया जा रहा है।

१. घुड़च - यह शब्द प्राचीन काल से वीणा एवं बीन के लिए प्रयुक्त हो रहा है। आज यह अनेक नामों से जाना जाता है यथा ब्रिज, घुड़ची, चौकी, घोड़ा। चपटा ब्रिज भारतीय तंत्र वाद्यों की एक प्रमुख विशेषता है जो अन्यत्र नहीं मिलती। इसी विशेषता के कारण यह संसार के वाद्यों से अलग अपना एक स्वतंत्र रूप प्रदर्शित करने में सहायक सिद्ध होता है। पर्शियन वाद्यों में ब्रिज खड़ा हुआ प्रयोग किया जाता है जैसाकि चित्र संख्या १ में दिखाया गया है। पर्शियन सितार पर घुड़च का चपटा होना ही सर्वप्रथम इसका भारतीय संस्कृति में समावेश का फल है जिससे जाहिर होता है कि सितार पर सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास, जब ध्रुपद अंग विशेषकर इब्राहीम आदिल शाह द्वारा बजाना प्रारम्भ हुआ, चपटा ब्रिज लगाया गया होगा। सवाई प्रतापसिंह देव ने अपनी पुस्तक 'संगीत सार' में ब्रिज का हिन्दी शब्द घुड़च कहा है जिसका अर्थ है घोड़ा। यह शब्द आजकल घुड़च के लिए काफी प्रयोग किया जाता है। 'संगीत सार' में रुद्रवीणा के चपटे ब्रिज को भी घुड़च ही बताया गया है,[१६] यह इस बात की ओर संकेत करता है कि सितार का ब्रिज भी इसी प्रकार का था। इसके संबंध में प्रमाण स्वरूप हमें कई सत्रहवीं तथा शुरू के अठारहवीं शताब्दी के तंबूरों के चित्र मिलते हैं।[३१] 'संगीत सार' के अनुसार चपटा ब्रिज सितार पर शुरु

में बीन का प्रभाव था। इसने सितार की आवाज़ पर काफी प्रभाव डाला तथा आवाज़ के ठहराव में भी काफी योगदान दिया।

२. परदे - पर्शियन भाषा में 'परदा' शब्द का अर्थ है स्वर। यह शब्द सितार में तांत के परदों के साथ ही प्रयोग में आ रहा है। शुरू-शुरू में सितार पर तांत के परदे ही प्रयोग में आए। संस्कृत में इसे सारिका तथा हिन्दी में इसे सुन्दरी शब्द के नाम से संबोधित किया गया है परन्तु परदा ही सबसे प्राचीन एवं प्रचलित शब्द है जिसका प्रयोग आज भी किया जाता है। लिखित साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम के० विलर्ड ने ही अपनी पुस्तक 'ट्रिटाइज़ आफ दि म्यूज़िक आफ हिन्दुस्तान' जो कि सन् १८३४ ई० में छपी थी, इसमें धातु के परदों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार सितार में अधिकतर सत्रह चल परदे होते हैं जो चांदी, पीतल या अन्य किसी धातु के बने होते हैं।[२९]

जयपुर के बाग वाले संग्रहालय में एक वाद्य 'सितारी' है। यह आकार में छोटा है। इसे प्राय: बगड़ावत कथा सुनने के लिए प्रयोग किया करते थे -- ऐसा इसके शीशे की प्लेट पर लिखा है। इस 'सितारी' में धातु के नालीदार परदे तांत से बंधे हैं। इनकी संख्या बारह है। इसके विषय में अधिक ज्ञात नहीं हो सका कि यह कब का वाद्य है, परन्तु यह काफी पुराना प्रतीत होता है।[३१]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि सितार पर धातु के परदे सन् १८३४ ई० से पूर्व ही लगे होंगे। 'कानून सितार' के अनुसार बीबीजान के गुरु बहादुर खां ने सितार पर मीड़, गमक, ज़मज़मा का काफी प्रयोग किया तथा उसे बीबीजान को सिखाया।[३२] यह पुस्तक धातु के परदों का सितार पर प्रयोग का श्रेय बहादुर खां को नहीं देती। इससे ऐसा लगता है कि उस समय तक धातु के परदे इतने प्रचलित हो चुके थे कि उनका सितार पर मौजूद होना कोई विशेष बात नहीं थी। शायद

मसीत खां के समय से ही सितार पर धातु के परदों का प्रयोग हो रहा होगा। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि फिरोज खां एवं मसीत खां ने ही सितार पर गत तोड़ों का निर्माण किया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि सन् १७३८ई० में 'मीराते देहली' के लिखने के समय सितार पर धातु के परदे लग गये थे या नहीं। परन्तु यह पूर्णतः कहा जा सकता है कि परदों का प्रयोग सन् १७५० से सन् १७६० ई० के मध्य में अवश्य ही प्रारम्भ हो गया था।

ब्रिज के बाद सितार पर धातु के परदों का प्रयोग बीन का एक अन्य प्रभाव था। खोजों से पता चलता है कि आधुनिक समय में जिस प्रकार के परदे लगते हैं, वैसे प्रारम्भ में नहीं थे। शुरू में सितार पर नालीदार धातु के परदे तांत द्वारा बांधे जाते थे, जैसाकि चित्र संख्या १७-१६ में दिखाया गया है।[३४]

इसी संदर्भ में एक अन्य वाद्य जो बीन सितार के नाम से प्रचलित हुआ, सितार का बीन पर प्रभाव बतलाता है। यह वाद्य मुख्यतः पूना तथा उसके आसपास पाया जाता है तथा यह आकृति में बीन जैसा ही प्रतीत होता है। इसमें सितार की भांति चल परदे होते हैं जिन्हें सितार की तरह ही लगाया जाता है। इस वाद्य को बीन के समान ही मिलाते हैं। चित्र संख्या २ में एक बीन सितार दिखाया गया है जिसमें अठारह चल परदे लगे हुए हैं।[३५] 'सरमायः इशरत' में भी 'तरफदार बीन सितार दो तूंबे का,' तथा 'तरफदार बीन सितार तीन तूंबे का' के चित्र दिये गये हैं। इनमें सोहल चल परदे तथा सात तरबों के तार लगे हुए हैं जिन्हें सप्तक में मिलाया जाता है और इस तरह जिस-जिस परदे के पास जो-जो खूंटी है, उन्हें इस तरह स्वरों में मिलाओ कि हरेक थाट बनता रहे जिस प्रकार स रे ग म प ध नी में मिलाने से इस थाट द्वारा पहाड़ी, झिंझोटी, गौड़, सोरठ, नट मल्हार, खमाज, जयजयवन्ती

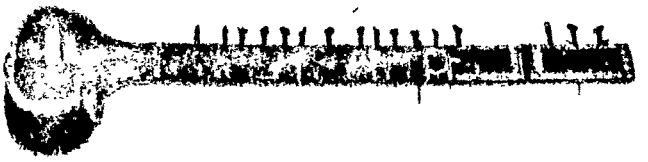

चित्र संख्या 17

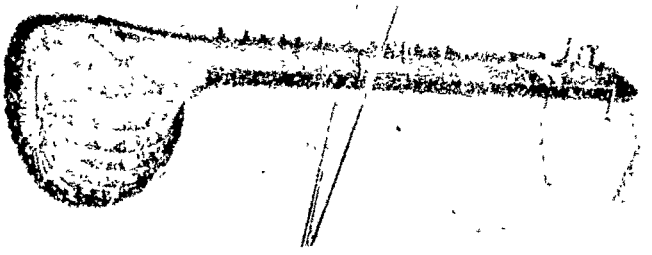

चित्र संख्या 18

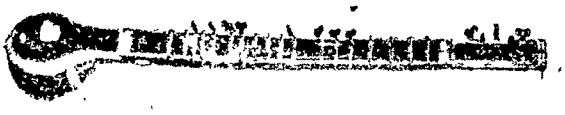

चित्र संख्या 19

इत्यादि बजाए जा सकते हैं।[३६] लेकिन इसके चित्र (चित्र सं० २०) देखने से यह बीन की तरह बिल्कुल नहीं लगता। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहीं तूंबों वाले सितार दिल्ली में अलग-अलग नामों से पुकारे जाते थे।

एक अन्य वाद्य, जो पूना के केलकर संग्रहालय में रखा गया है, उन्नीसवीं शताब्दी का बतलाया जाता है।[३७] इस वाद्य में भी नालीदार परदे लगे हैं जिन्हें तांत से बांधा जाता है। इनकी संख्या चौदह है तथा वे चल हैं। तारों की संख्या, झिकारी का खास प्रकार से लगाना, तूंबा, ब्रिज की स्थिति, परदों की संख्या तथा उनका चल होना इसे सितार की भांति ही बताता है। यह वाद्य अगर ऑस्ट्रच वीणा ही है (जैसा कि इस वाद्य पर लगी पट्टी पर लिखा है) तो भी यह वाद्य वीणा पर सितार के प्रभाव को पूरी तरह दर्शाता है। (चित्र सं० २१)

सादिक अली खां ने अपनी पुस्तक में सितार के दो ठाठों के बारे में वर्णन किया है -- प्रथम चल ठाठ जिसमें सोलह सुन्दरियां होती हैं तथा दूसरे अचल ठाठ जिसमें इक्कीस सुन्दरियां लगी होती हैं। अचल ठाठ के सितारों को बीन सितार की संज्ञा दी गयी है। इसमें ऊपर वाला तूंबा बीन की तरह लगाया गया तथा इक्कीस सुन्दरियां बांधी गयीं। उसमें बीन का बाज शामिल करके बजाना शुरू किया।[३८] यह वर्णन अचल ठाठ के सितारों को बीन के समान बनाने का प्रयास ही प्रतीत होता है।

इसी प्रकार सन् १८७० ई० की लिखी पुस्तक 'यंत्र क्षेत्र दीपिका' में भी दो प्रकार के सितार बतलाए गये हैं। चल सितार में सत्रह परदे बताए हैं जबकि एक रूपा सितार में सभी स्वरों के परदे हैं, इसलिए उन्हें हिलाया नहीं जाता है।[३९] इसी प्रकार की सन् १८७४ ई० में लिखी गयी 'तहसील-ए-सितार' के अनुसार यह दोनों ठाठ दिल्ली के कलाकारों द्वारा बनाए गये।[४०] 'कानून सितार' के अनुसार 'बीन पर बाईस अचल परदे होते हैं, कोई-कोई सितार पर भी रखते हैं। दूसरी तरह में सोलह परदे होते हैं, यह चल होते हैं।'[४१]

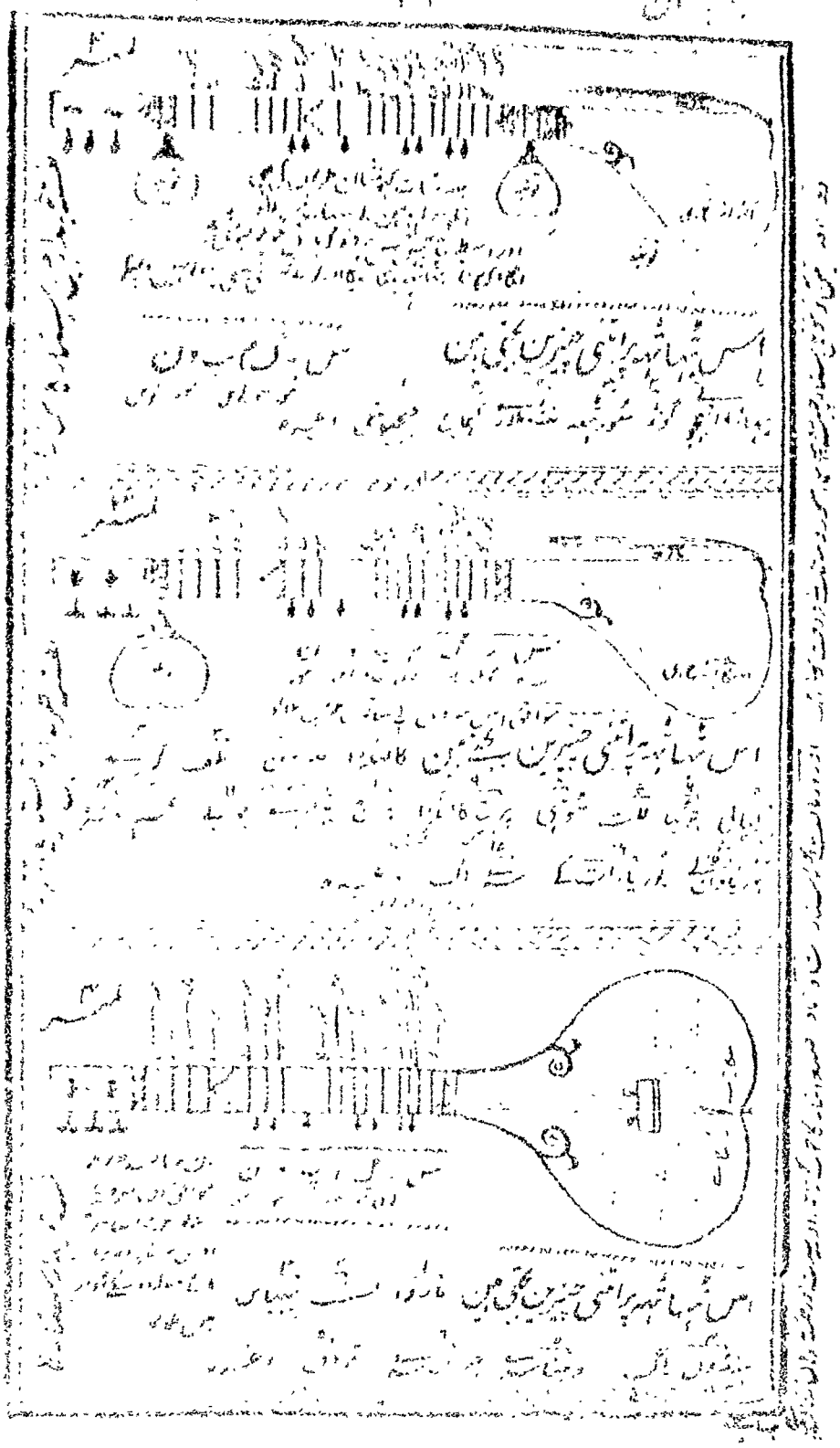

चित्र संख्या 20

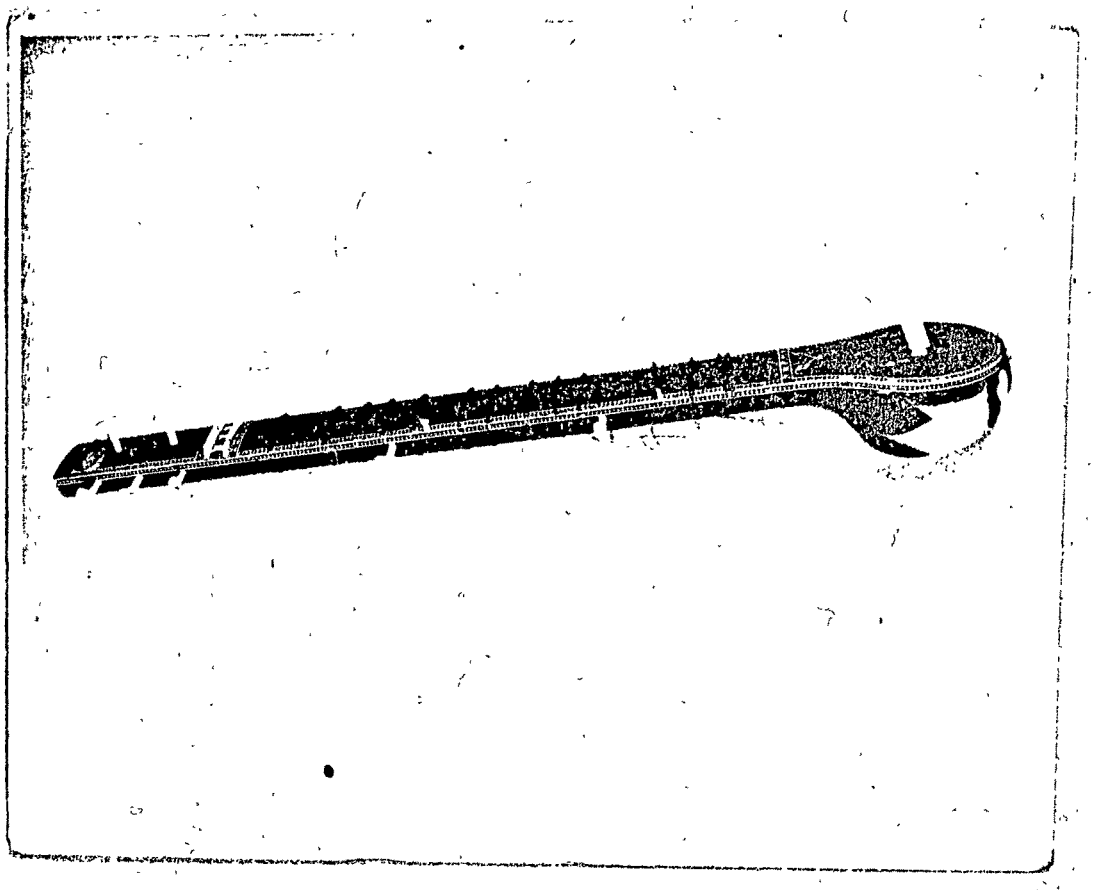

चित्र संख्या 21

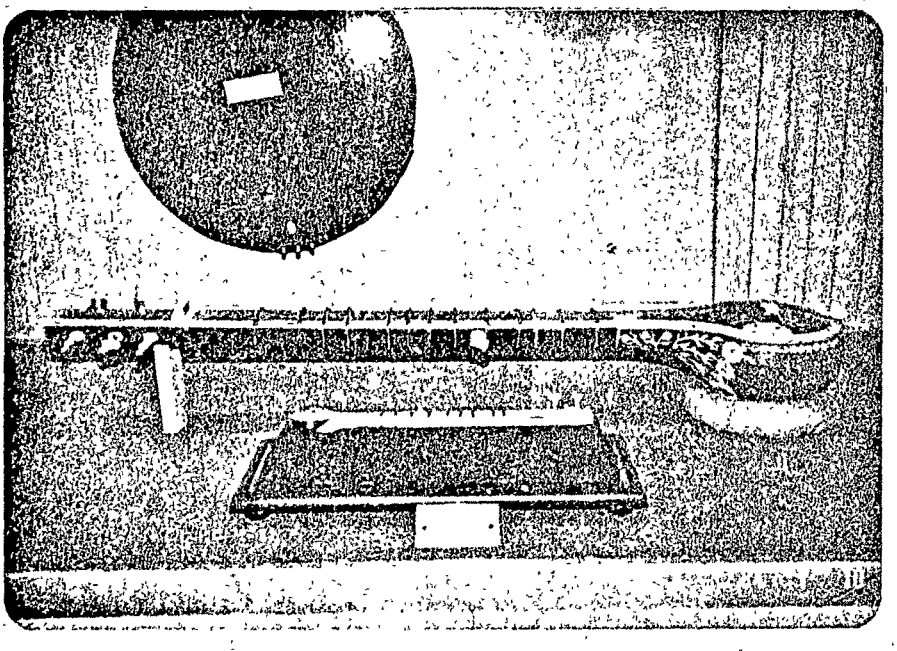

चित्र संख्या 22

'गुलदस्ता-ए-मूसीक़ी' जो रामभजु लाल द्वारा सन् १८७० ई० में पटना में लिखी गयी, सिर्फ एक प्रकार के सितार का वर्णन करती है, जिस पर सोलह परदे लगे हैं।[४२]

इन सब वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि देहली तथा आसपास के क्षेत्रों में सितार को बीन के समान बनाने के लिए सितार पर परदों की संख्या को बढ़ाया गया परन्तु इसका प्रचार एवं प्रचलन बहुत कम हुआ। यह एक प्रयोग मात्र ही रहा।

कैप्टेन विलर्ड के अनुसार सितार में परदों की संख्या सत्रह होती थी[२६], जबकि दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में एक सितार पर केवल बारह नालीदार परदे ही लगे हुए हैं।[४३] इसी प्रकार एफ०जे० फेटीस ने पेरिस में सन् १८३५ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में जो सितार देखा था, उसमें भी बारह परदे लगे हुए थे।[२१] पूना के केलकर संग्रहालय में स्थित ओस्ट्रिच वीणा में चौदह पर्दे हैं।[३७] (चित्र संख्या २१)। दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखे एक अन्य सितार में अठारह परदे हैं।[४३]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परदों की संख्या समय-समय पर आवश्यक्तानुसार घटती व बढ़ती रही। यथा उपर्युक्त बारह, चौदह, सोलह, सत्रह एवं अठारह परदों वाले सितार उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित रहे। बाद में इनकी संख्या बढ़कर बीस, इक्कीस, बाईस तथा तेईस भी हो गयी। उदाहरणत: अमृतसेन के समय अचल ठाठ के सितारों में तेईस परदे होते थे।[४४] शुरु-शुरु में जब तांत के परदे लगाए जाते थे तो उनकी संख्या सोलह या सत्रह ही थी। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब उन्हें धातु के परदों में बदला गया तब डांड की लम्बाई तथा बजाने की सुविधा के कारण विभिन्न वादकों ने परदों की भिन्न-भिन्न संख्या का प्रयोग किया। आजकल सिर्फ चार प्रकार के परदों की व्यवस्था वाले सितार ही

प्रयोग में आते हैं । प्रथम सत्रह परदे वाले जो कि मुश्ताक अली खां आदि प्रयोग करते हैं, द्वितीय उन्नीस परदों वाले - गुलाम हुसैन आदि प्रयोग करते हैं, बीस परदों वाले सितार रविशंकर, हलीम जाफर खां, निखिल बनर्जी, विलायत खां, बुद्धादित्य मुखर्जी आदि सभी प्रयोग करते हैं -- इस प्रकार के सितार काफी प्रचलित हैं । बाईस परदों वाले सितार मणीलाल नाग आदि के द्वारा ही प्रयोग में लाए जाते हैं ।[४५]

३. डांड - तीन या चार तारों वाले सितार में पतली डांड ही काफी थी । इस प्रकार की डांड वाले सितार पर मीड़ का काम भी किया जा सकता था । परन्तु तारों की संख्या में वृद्धि के साथ चौड़ी डांड की आवश्यकता पड़ी । मींड के काम के लिए यह जरूरी था कि मुख्य मध्यम (बाज) का तार डांड के बीचों-बीच हो । जैसे जैसे सितार पर तारों की संख्या में वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे इसकी डांड की मोटाई भी बढ़ गयी, क्योंकि सितार की वादन शैली के विकास के साथ इसका मीड़ लेने का क्षेत्र भी बढ़ गया । यथा सितार के ही विकसित रूप सुरबहार, जो कि आलाप के काम के लिए प्रयोग किया जाता था, में सात-सात स्वरों की मीड़ ली जाती थी। अत: उसकी डांड अपेक्षाकृत चौड़ी रखी गयी । इसी प्रकार जब तक सितार में तरबों का प्रयोग नहीं होता था, तब तक डांड का सामने वाला भाग पूरा उभरा हुआ था । परन्तु जब से तरब के तारों का प्रयोग आरम्भ हुआ, डांड में एक और परिवर्तन आया, वह यह कि इसकी डांड सामने की तरफ से कुछ अन्दर की तरफ गोलाकार कटी हुई सी हो गयी जिससे तरब के तारों की ध्वनि का निकालना संभव था अन्यथा बिना तरब के सितार जैसी डांड पर तरबों का प्रयोग करने से वह डांड से छूती रहेंगी तथा ध्वनि नहीं निकलेगी । यह डांड में परिवर्तित तरबों के प्रयोग के साथ तरबदार सितार में ही मिलता है । यह सब परिवर्तन, डांड का चौड़ा होना तथा तरब के प्रयोग से डांड में परिवर्तन, क्रमश: सन् १७६० ई० से सन् १८३० ई० के बीच में हुए ।

४. मिज़राब - मिज़राब का सितार पर प्रयोग एक प्राचीन घटना है। इसका शाब्दिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि यह शब्द अरबी अक्षर `ज़र्ब` से निकला है -- जिसका अर्थ है `छेड़ना`।[४६] यह शब्द लकड़ी या गरुड़ के नाखून से बने हुए कोण के लिए प्रयोग होता था जो कि अरबी तथा पर्शियन रबाब तथा बाद में ऊद के लिए प्रयोग में लाया जाता था। मिज़राब शब्द कम से कम नवीं शताब्दी से प्रयोग में आ रहा है।[४७] क्या यह नाम पर्शियन वाद्यों के साथ भारत आया ? यह बताना मुश्किल है फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि यह शब्द भारत में काफी पहले से प्रचलित था। भारत में यह नाम सर्वप्रथम सितार के कोण के लिए प्रयोग किया गया। किन्तु अब यह शब्द गिटार, बीन आदि अनेक वाद्यों को बजाने के लिए उपयोग किया जा रहा है।

मिज़राब भी पहले मुख्यत: दिल्ली के सितारों में प्रयोग किए गए तथा बाद में उसका कई प्रकार के सितारों में प्रयोग किया जाने लगा। सत्रहवीं शताब्दी में श्रीनिवास द्वारा रचित `रागतत्व विबोध` में तार के कोण का ज़िक्र किया गया है जिससे इसका उस समय होना प्रतीत होता है। इस पुस्तक में गमक जिसे दक्षिण भाषा में कलिवाल्यम कहा जाता था, के संदर्भ में कोण का ज़िक्र है।[४८] `संगीतसार` के लेखक श्रीनिवास के कथन पर टिप्पणी कसते हुए इस तार वाले कोण को नाखून कहा है।`[४९]

सितार पर मिज़राब के प्रयोग का ज़िक्र सर्वप्रथम कैप्टेन विलर्ड ने अपनी पुस्तक में किया है। उनके अनुसार `तारों को दाहिने हाथ की उंगली से छेड़ा जा सकता था।` यह कहने से ऐसा प्रतीत होता है कि मिज़राब सितार की वादन शैली में काफी सहायक रहा होगा। कैप्टेन विलर्ड ने एक अन्य किस्म के बीन के कोण के विषय में भी लिखा हैजोकि मुख्यत: बंगाल में प्रयोग किया जाता था। यह मछली के

बड़े दाँतों का बना होता था तथा इसे धागों या तारों से उंगली पर बाँधा जाता था।[50] बीन के कोण सहायक तारों पर प्रयोग किए जाते थे इसलिए शायद वे बिना नाम के रहे।

सितार के बाज का तार डाँड के आधे भाग में होने के कारण, दाहिने हाथ की स्थिति तारों के ऊपर आ गयी। इस स्थिति में उंगली में मिज़राब पहनकर बजाने से हाथ के संचालन में काफी सुविधा तथा वादन में सफाई आयी। इसके प्रयोग से वादन में विभिन्न प्रकार के जटिल बोलों को प्रदर्शित किया जा सकता है। बीन, रबाब आदि वाद्यों की तकनीकों को मिज़राब की सहायता से सितार पर बजाना सरल हो गया। मिज़राब के प्रयोग की सीमा आजकल काफी बढ़ गयी है तथा इससे अनेक वाद्यों का वादन होता है। प्रत्येक सितार वादक का मिज़राब पहनने के लिए उंगली में विशेष स्थान होता है। कुछ वादक छोटी, कुछ वादक बड़ी तथा कुछ वादक मध्यमाकार मिज़राब पहनते हैं। मिज़राब भी आजकल कई प्रकार की मिलती हैं यथा पीतल की, लोहे की जिस पर प्लास्टिक चढ़ी होती है, लोहे की जिस पर गोल-गोल तार बँधा होता है तथा केवल लोहे की मिज़राब। सामान्यत: सभी उच्चकोटि के वादक केवल लोहे की मिज़राब को पहनकर ही वादन करते हैं क्योंकि यह उंगली में अन्दर जाकर पक्की तरह से चिपक जाती है जिससे वादन करते समय उंगली से मिज़राब निकलने का डर नहीं रहता।

५. <u>तारों की संख्या</u> - कैप्टेन विलर्ड ने अपने लेख में[२६] तथा शाह आलम ने नादिरातिशाही में[५१] तीन तार वाले सितार का वर्णन किया है। इसमें पहला तार लोहे का तथा दूसरा व तीसरा तार पीतल का है। कैप्टेन विलर्ड के अनुसार ही 'आजकल कई कलाकार इस पर शोध कर रहे हैं।'[२६] उनका यह कहना तीन तारों के सितार के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सितारों की भी संभावना बताता है।

इस संदर्भ में 'सरमाय: इशरत' में दिए गए तीन तार वाले सितार के तारों की व्यवस्था उल्लेखनीय है। इनके अनुसार सितार में पहला लोहे का, दूसरा पीतल का तथा तीसरा पुन: लोहे का तार होता है [५२], जबकि एक अन्य पृष्ठ पर यह केप्टेन विलर्ड की भांति ही तीन तार क्रमश: लोहे, पीतल, पीतल के भी वर्णन कर रहे हैं। [३८] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शुरू के तीन तार वाले सितार में कम से कम दो प्रकार के तारों की व्यवस्था तो थी ही। एक यात्री फैनी पर्क्स द्वारा सन् १८५० ई० में लिखे गए एक लेख में चार तार वाले सितार का वर्णन किया गया है। [२१] इसमें केप्टेन विलर्ड के द्वारा बताई गयी तारों की व्यवस्था ही है। प्रथम लोहे का, द्वितीय एवं तृतीय पीतल के तथा चौथा लोहे का सबसे छोटा तार है। लेखक के अनुसार यह वाद्य लखनऊ में बनाया गया तथा उन्हें किसी से यह भेंट स्वरूप प्राप्त हुआ। वे इस वाद्य को बहुत सुन्दर बताते हैं।

इसी प्रकार का एक हाथी-दांत का सितार जिसमें चार तार हैं, कलकत्ता संग्रहालय में भी देखा जा सकता है। इसके सम्बन्ध में पूछने पर वहां के अधिकारियों से कोई विशेष जानकारी नहीं मिली। [५३] (चित्र सं० २२) यंत्र क्षेत्र दीपिका, जो सन् १८७० ई० में लिखी गयी थी, में पांच तारों वाले सितार का वर्णन मिलता है [५४] जिसमें तीन तार पीतल के तथा बाकी दो तार पक्के लोहे के बने हैं। सामान्यत: पीतल के तारों को कच्चे तथा लोहे के तारों को पक्के तार कहते हैं। इसमें चार तार लोहे के रहने में भी कोई हानि नहीं है परन्तु एक तार पीतल या अन्य किसी कच्ची धातु का होना आवश्यक है। इस पुस्तक का तीसरा प्रकाशन सन् १८९० ई० में प्रकाशित हुआ था।

बंगाल के निवासी कृष्णधन बंदोपाध्याय द्वारा रचित 'सितार शिक्षा' सन् १८६६ ई० में लिखी गयी थी, इस पुस्तक में भी 'यंत्र क्षेत्र दीपिका' की तरह सितार में मुख्यत: पांच तार ही बतलाए गये हैं। [५५] इसमें पहले बाज के तार को नायकी

तथा दूसरे तार को खड्ज बताया गया है। तीसरा तार पीतल का, चौथा लोहे का तथा पांचवा मोटा पीतल का तार होता है जैसाकि आजकल भी प्रयोग किया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार अति मन्द्र खड्ज तार, जिसे खरज भी कहते हैं, अभी बीसवीं शताब्दी में ही लगा है [५६] परन्तु हलीम जाफर एवं उसमान खां के अनुसार यह तार रहमत खां के समय भी लगा हुआ था। इसके प्रमाण स्वरूप तीन-तीन मिनट वाले रिकार्ड संगीत नाटक अकेडमी में मौजूद हैं जिन्हें इस शोधकर्त्री ने स्वयं सुना है। यह तथ्य बाकी लिखित प्रमाणों से भी मेल खाता है कि यह तार मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के आसपास लगा।

'सितार शिक्षा' दो विभिन्न सितारों का उल्लेख करती है -- बड़े व छोटे सितार। दोनों में पांच तार होते हैं परन्तु बड़े सितार में चिकारी के तारों का भी वर्णन है [५५] जिसके सम्बन्ध में चिकारी वाले शीर्षक में विस्तार से बताया जाएगा।

मादन-उल-मूसीकी को मोहम्मद करम इमाम ने सन् १८५६ ई० के आसपास लिखा। वे बिहार के निवासी थे। इनके अनुसार सितार में छह तार होते हैं जिनमें से एक चिकारी है। इन्होंने तारों के नाम भी दिए हैं। [५८] पहला लोहे का तार जिसे बाज कहते हैं -- यह आज भी मुख्य तार है। (ध्यान रहे कि बंगाल में इसे नायकी का तार कहते हैं), दूसरे व तीसरे तारों को खरज के तार कहते हैं -- ये पीतल के होते हैं। चौथा तार पंचम का लोहे का होता है, पांचवां तार पीतल का होता है तथा छठा तार लोहे का होता है जो चिकारी का काम करता है।

दिल्ली में सन् १८७० ई० में लिखी 'कानून सितार' में लेखक ने छह तार वाले सितार का वर्णन किया है। [५९] प्रथम बाज का तार लोहे का, खरज के दो तार पीतल के, पंचम का एक तार लोहे का, खरज का एक तार पीतल का तथा एक अन्य लोहे का तार पपीहे का तार कहलाता है।

सन् १८८४ ई० की 'सरमाय: इशरत' में सादिक अली खां ने सात तारों वाले सितार के बारे में काफी विस्तारपूर्वक बताया है। इनके अनुसार, शुरू के तीन तारों, जिनमें से एक लोहे का तथा दो पीतल के थे, की संख्या बढ़ाकर पांच कर दी गयी -- यानी एक तार आहनी तथा दूसरा तार विरंजी जिसे लरज भी कहते हैं। बाद में चिकारी तथा जेल के तार भी लगाए गए।[३८] इस सितार को लेखक ने सात तारों वाला सितार बताया है। इन्हीं के अनुसार एक अन्य तीन तार वाले सितार में, 'एक तार लोहे का -- जिसे बाज कहते हैं, दूसरा पीतल का - जिसे खरज कहते हैं तथा तीसरा लोहे का तार है। इसके बाद संगीतज्ञों ने एक और खरज एवं मंद्र का तार जिसे लरज कहते हैं, लगा दिया तथा बाद में चिकारी, जेल और तरबें भी लगा दीं।[५२] इस प्रकार सितार ने अपना नवीन रूप सन् १८८४ ई० तक अवश्य प्राप्त कर लिया था। 'तहसील-ए-सितार' पुस्तक के लेखक रहीम बेग खैराबाद के निवासी थे। यह पुस्तक सन् १८७४ ई० में लिखी गयी। इसमें लेखक ने तीन चिकारियों का वर्णन किया है[६०] जबकि राममजु लाल ने अपनी पुस्तक 'गुलदस्ता-ए-मूसीक़ी' (सन् १८७३ ई०) में पांच तार वाले सितार का ही वर्णन किया है।[४२]

उपर्युक्त सभी उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में पांच, छह तथा सात तारों वाले सितार ही अधिक प्रचलित थे हालांकि अन्त की अठारहवीं तथा शुरू की उन्नीसवीं शताब्दी में तीन व चार तार वाले सितार भी देखने में आए। तारों की संख्या दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्र में सबसे पहले बढ़ी तथा अधिक से अधिक सात तारों तक पहुंची। पटना, जयपुर आदि जगहों में पांच तार वाले सितार की ही प्रधानता रही जबकि बंगाल में छह तारों वाला सितार प्रचलित हुआ। इस प्रकार सन् १८८४ ई० तक कम से कम, दिल्ली में सितार अपना पूर्ण रूप को प्राप्त कर चुका था।

६. सितार के तूंबे -- सितार की डांड के ऊपरी भाग पर दूसरे तूंबों के लगने की निश्चित समयावधि बताना बहुत मुश्किल है क्योंकि प्रारम्भ में यह काफी अप्रचलित, अव्यवसायी तथा अलिखित रहा है। यह भी सितार को बीन की तरह बनाने का एक प्रयत्न रहा होगा। हालांकि ऊपर के तूंबों का वर्णन हमें किसी पुराने लेख में नहीं मिलता लेकिन इससे ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह उस समय मौजूद नहीं था। क्योंकि यह सितार का कोई ज़रूरी अंग नहीं था, इसलिए उस पर शायद विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ऊपर का तूंबा बीच की उन्नीसवीं शताब्दी तक अवश्य लग गया था। इसे लगाने वालों में रहीम सेन या गुलाम मोहम्मद की संभावना ही अधिक है, जिन्होंने बीन की काफी विशेषतायें सितार पर लायीं।

सन् १८७६ ई० की एक पुस्तक `नग्मा-ए-सितार` के लेखक ने तीन तूंबे के सितार का चित्र दिया है। इसमें एक तूंबा डांड के दूसरे सिरे पर व तीसरा तूंबा मुख्य तूंबे के ऊपर डांड के निचले भाग में लगा हुआ है।[६१] इसी प्रकार रहीमसेन के पुत्र अमृतसेन का तीन तूंबे वाले सितार के साथ एक चित्र सुदर्शनाचार्य ने अपने ग्रन्थ में दिया है। (चित्र संख्या २३ पृ.२१३) उनके सितार में एक चौड़ी डांड थी जिससे सितार में काफी अच्छापन आ गया होगा। इसे बीन सितार कहा जाता था। इसी प्रकार `सरमाय: इशरत` में दो तथा तीन तूंबे वाले बीन सितारों का वर्णन किया गया है, जिसमें सोलह परदे लगे हैं।[३६] (चित्र सं० २०) इन दोनों चित्रों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक दिल्ली में तरबों का प्रचार काफी हो चुका था जबकि जयपुर के सितारों में तरबें नहीं थीं तथा पांच मुख्य तारों का ही प्रचार था (दिल्ली में सात तार लग चुके थे)। तीन तूंबे वाले सितार बीसवीं शताब्दी के मध्य तक कुछ संगीतकारों द्वारा प्रयोग किए गए। यह असुविधा के कारण ज्यादा प्रचलित न हो सके।

७. चिकारी - चिकारी शब्द का अर्थ है रोना या चिल्लानातथा इसे सितार के किनारे के तारों को दशनि के लिए प्रयोग में लायागया। हालांकि इस शब्द का बीन पर भी प्रयोग किया गया परन्तु सर्वप्रथम इसे सितार के लिए ही अपनाया गया। ~~परन्तु सर्वप्रथम इसे सितार के लिए ही अपनाया गया~~। चिकारी के तारों का सितार पर लगना एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसे कि बीन से प्रेरणा मिली। यह चपटे ब्रिज तथा धातु के पर्दों के प्रयोग के बाद की एक और बीन की प्रेरणा है। वी०के० राय चौधरी के अनुसार चिकारी सितार पर सुरबहार के बाद आयी।[६२] इनका कथन कि, सुरबहार सन् १८५० ई० के आसपास बनाया गया, तर्कसंगत नहीं लगता। एक अन्य स्थान पर वी०के० राय चौधरी लिखते हैं कि विख्यात सितार निर्माता स्व० कन्हाई लाल दास के पास एक जयपुरी सितार मरम्मत के लिए आया था। स्व० दास महोदय ने ग्रन्थकार को वह वाद्य दिखाकर टीका की थी कि जयपुरी घराने में क्या झाला नहीं बजता? वस्तुत: उस सितार में चिकारी की कोई व्यवस्था ही नहीं थी।[६३]

सेनिया घराने के विख्यात सितार वादक स्व० बरकत उल्ला खांका एकमात्र रिकार्ड है जिसमें नायकी तार एवं जोड़ी के तार पर समान गुंजन के अलावा और किसी तार की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। गत के बीच में चिकारी का सामान्य आघात भी नहीं है, वे पुरातन पद्धति के वादक थे।[६३]

ऐसा माना जाता है कि जयपुर के सेनिया घराने के कलाकार जिन्होंने सितार दिल्ली के मसीतखानी बाज बनाने वालों से सीखा, झाला नहीं बजाते थे। इसी प्रकार पूर्वी बाज में भी चिकारी नहीं थी जैसाकि राममजु लाल ने अपनी पुस्तक 'गुलदस्ता-ए-मूसीकी' (१८७३) में लिखा है।[४२] परन्तु दिल्ली की पुस्तक 'सरमाय: इशरत' के लेखक (सन् १८८४ ई०) के अनुसार झाला तथा ठोक पुराने दिल्ली बाज में भी थे।'[६४] अगर उनका यह लेख जो कि काफी सत्य समझा जाता है, पुराने दिल्ली बाज के विषय में

कहता है, तो फिर सितार पर चिकारी मध्य उन्नीसवीं शताब्दी से काफी पहले होनी चाहिये ।

मोहम्मद करम इमाम के अनुसार गुलाम मोहम्मद खां ठोक बजाने में माहिर थे[६५] इसके लिए भी चिकारी का होना आवश्यक है । ये सभी उल्लेख तथ्य के काफी समीप लगते हैं । क्योंकि सुरबहार सन् १८३० ई० से पूर्व बन चुका था (यह विस्तार-पूर्वक आगे वर्णित किया गया है), इसलिये चिकारी के तारों का सितार में इससे पहले ही समावेश हो जाना चाहिये । इस प्रकार दिल्ली के आसपास जहां तारों की संख्या में काफी वृद्धि हुई, चिकारी शुरू की उन्नीसवीं शताब्दी के आसपास अवश्य ही लग गई होगी । चिकारी को `सितार दर्पण` तथा `कानून सितार` में पपीहा ही कहा गया है । `राग प्रकाशिका` में चिकारी एवं पपीहा दो अलग तारों को संबोधित करने के लिये प्रयोग किये गये । `सरमाय: इशरत` में इसे ज़ेल के नाम से भी संबोधित किया गया है । इस पुस्तक में कहीं-कहीं पर चिकारी एवं ज़ेल शब्दों का अलग-अलग चिकारियों के लिए भी प्रयोग किया गया है ।[५२]

८. तरब - तरब भी एक पर्शियन शब्द है जिसका अर्थ है उत्तेजना या खुशी । यह संगीत के लिए काफी प्राचीन काल से प्रयोग किया जाता रहा है । सितार से पूर्व यह अन्य वाद्यों, जो मुख्यत: अफगानिस्तान से आये थे, में लगते थे । एफ०जे० फेटीस ने अपने लेख में एक बहुत ही रोचक सितार का वर्णन किया है ।[२१] फेटीस के अनुसार यह एक प्रकार की वीणा है जो कि दिल्ली के आसपास पाई जाती है । यह वाद्य इन्होंने सन् १८५५ ई० में पेरिस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में देखा । इसमें १० तरब के तार हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त लेख एवं `सरमाय: इशरत` के अनुसार सितार में तरब के तार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से पूर्व ही आ गए थे । वह कहां से प्रेरित होकर आए-- यह उल्लेख कहीं नहीं मिलता । इस संबंध में विभिन्न मत हैं । एक मत के अनुसार तरबों

की प्रेरणा सारंगी से मिली, जिस पर तरब बहुत पहले से ही मौजूद थे। कैप्टेन विलर्ड ने अपनी पुस्तक में सारंगी पर तरब के तार बतलाए हैं। इस मत को मानने वाले तरब के तारों का सितार पर प्रयोग का श्रेय (तथा सुरबहार के आविष्कारक) उन्नीसवीं शताब्दी के मशहूर सितार-वादक इमदाद खां के पिता साहबदाद को बतलाते हैं। क्योंकि वह एक सारंगी वादक थे, इसलिए इस मत को मान्यता प्राप्त हुई कि उन्होंने सन् १८५० ई० में सुरबहार बनाया तथा बाद में सितार पर तरबें लगायीं।[६६] जैसाकि पूर्व वर्णन किया जा चुका है कि तरब के तार मध्य उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व ही सितार पर आ गए थे इसलिये इस मत को गलत मानना पड़ेगा। दूसरे मत के अनुसार तरब के तार अफगानिस्तानी रबाब में काफी पहले से ही थे। 'रागदर्पण' में फकीरुल्लाह ने औरंगज़ेब के समय में कई तारों वाले रबाब का वर्णन किया है। इस पर तांत के तार लगे हुए थे तथा धातु के तार उनकी सहायता के लिये प्रयोग किए गये।[६७]

अकबर के काल की 'आइने अकबरी' में भी कई तारों वाले रबाब का उल्लेख मिलता है, जिसमें तरब के तार थे।[६८] ये दोनों ही अफगानिस्तान के रबाब थे। ऐसा माना जाता है कि शायद अफगानिस्तानी रबाब के प्रभाव से ही सितार पर तरब के तार लगे क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वे लोग भारतीय संगीत के काफी समीप थे। यह मत तथ्य के काफी समीप लगता है।

एक अन्य मत के अनुसार शुरू में तरब के तार सुरबहार की विशेषता थी। 'नग्मा-ए-सितार' में गुलाम मोहम्मद द्वारा विकसित एक प्रारंभिक सुरबहार का चित्र अंकित किया गया है। इस चित्र के अनुसार तरब के तार सुरबहार में शुरू से ही थे। अगर ऐसा है तो तरब के तारों का सुरबहार में समावेश का श्रेय गुलाम मोहम्मद को ही जाता है।

उपर्युक्त वर्णित तीनों मतों में से सितार पर तरब रबाब के प्रभाव से आए, यह मत ही सत्य माना जा सकता है क्योंकि फेटीस के सितार को देखने से सितार को रबाब की तरह बनाने का प्रयास करने की झलक मिलती है [२१] यथा दोनों ओर खूंटियां, छोटी डांड, तूंबे की आकृति रबाब की तरह आदि। यह वाद्य प्रारंभिक सितारों में से एक है, क्योंकि इस पर मुख्य चार तार ही हैं। शुरू के सुरबहार की आकृति देखने से भी ऐसा प्रतीत होता है। इस आधार पर यह पूर्णत: कहा जा सकता है कि सितार पर तरब के तार मध्य उन्नीसवीं शताब्दी से पहले ही लग चुके थे। इसमें मुख्यत: दिल्ली तथा उसके आसपास के कलाकारों का ही योगदान रहा। रबाब के संगीत को सितार के संगीत में समावेश करने का यह प्रारंभिक प्रयोग होगा। इसे किस संदर्भ में तथा किसने बनाया, यह लिखित उल्लेखों के अभाव में कहना मुश्किल है। समय का भी केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

सुरबहार

उन्नीसवीं शताब्दी के आखिरी दशकों का एक मुख्य वाद्य सुरबहार था जो कछुआ सितार का बड़ा आकार था। कुछुआ सितार सितारियों द्वारा मुख्यत: बीन का आलाप बजाने के लिए प्रयोग किया जाता था। मौखिक उल्लेखों में सुरबहार के आविष्कार के बारे में पूर्णत: नहीं बताया गया है। एस०एम० टैगोर के अनुसार कछुआ सितार व सुरबहार कच्छपी वीणा से बनाए गए, परन्तु यह असत्य है।

सुरबहार का नाम सर्वप्रथम प्रसिद्ध वादक सज्जात मोहम्मद के संदर्भ में आता है जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में कलकत्ते में रहे। परन्तु उन्हें सुरबहार का आविष्कारक नहीं बतलाया जाता। इस प्रकार उनके पूर्वजों के बारे में ज्ञान होने से ही सुरबहार के आविष्कारक के बारे में कुछ पता लग सकता है। सज्जात मोहम्मद के पिता

अथवा बाबा गुलाम मोहम्मद थे। कुछ उल्लेखों में इन्हें सुरबहार का आविष्कर्ता बताया गया है।[६२] उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुलाम मोहम्मद मशहूर बीनकार उमराव खां के शिष्य थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम पूरा बीन आलाप सितार पर बजाने के लिये यह वाद्य आविष्कृत किया जिसका चित्र रहीम बेग की किताब में मिलता है। इसमें तरब, दूसरा तूंबा तथा एक अजीब आकृति का मुख्य तूंबा है जिस पर शायद खड़ा करने का आधार भी बना है। यह शुरू का या एकदम उसके कुछ बाद का सुरबहार हो सकता है। गुलाम मोहम्मद एवं उनके शिष्यों ने ही उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक सुरबहार बजाया। वे मुख्यत: बंगाल में रहते थे। बंगाल के मौखिक उल्लेखों में ही सुरबहार के आविष्कारक का नाम आता है। विष्णुपुर के सत्यकिंकर बनर्जी तथा वी०के० राय चौधरी दोनों ही बंगाल के पुराने घरानेदार वादक हैं। इनके अनुसार गुलाम मोहम्मद ने ही सुरबहार का आविष्कार किया।[६२] सुरबहार के आविष्कार के आसपास के समय का एक लेख फ्रांस के एक लेखक ने सन् १८८० ई० में प्रकाशित किया जिसमें शायद एस०एम० टैगोर की 'यंत्र क्षेत्र दीपिका' से प्रभावित होकर लेखक ने टिप्पणी कसी है कि लखनऊ के गुलाम मोहम्मद ने ५० वर्ष पूर्व सुरबहार का आविष्कार किया।[२१] परन्तु इस विषय में कुछ और पता नहीं चलता। इन्होंने सुरबहार की धुंधली आकृति तथा मिलाने का तरीका भी दिया है। एक बड़े सितार का उल्लेख एक अप्रकाशित लेख में केप्टेन राबर्ट सुमित द्वारा भी दिया गया है।[२१] जोकि शायद सुरबहार ही है। लेखक कानपुर के एक कार्यक्रम के विषय में लिखते हैं जो उन्होंने स्वयं सुना है। इसमें मुख्य एक सितार वादक था तथा उसके साथ एक और उसी जैसा वाद्य बजाने वाला व्यक्ति था जो शायद सुरबहार ही बजा रहा था। वे लिखते हैं कि दूसरा वादक एक वाद्य पर बाज बजा रहा था जो कि पहले जैसा ही था, केवल आकार में बड़ा था तथा वादक ने मिज़राब नहीं पहना था। राबर्ट सुमित द्वारा

अंकित चित्र में पांच खूंटियां दिखायी देती हैं। इस वाद्य का गुलाम मोहम्मद के सुरबहार से कोई वास्ता था या नहीं, यह कहना कठिन है, लेकिन यह रहीम बेग के लेख से पुराना लेख है। शायद गुलाम मोहम्मद ने इस नए सितार का काफी प्रयोग किया। सन् १८८० ई० के फ्रांस के लेख के अनुसार 'सुरबहार बड़े कछुए सितार से बिल्कुल अलग नहीं है। हालांकि इसके विपरीत इसमें पांच मुख्य तार एवं चिकारियों को मिलाने की दो भिन्न-भिन्न विधियां दी गयी हैं।'

एक अन्य लेख जो मनमोहन ठाकुर द्वारा इमरत खां से एक भेंटवार्ता पर आधारित है, में तरब व चिकारी के तारों को सितार पर सुरबहार के बाद बतलाया गया है।[६६] इनके अनुसार, 'सुरबहार इमदाद खां के पिता साहबदाद खां के द्वारा बनाया गया। साहबदाद खां ने उस समय का एक वाद्य कछुआ वीणा, जिस पर चिकारी एवं तरबों की कोई व्यवस्था नहीं थी, की लम्बाई एवं चौड़ाई बदली, तथा उसमें तीन चिकारियों व ग्यारह तरबें लगाकर सुरबहार बनाया। इन्होंने मंद्र तथा मध्य सप्तक में कुछ और परदे भी लगाये जोकि कछुआ वीणा पर नहीं थे जैसाकि मंद्र में कोमल ध, कोमल नी तथा मध्य में कोमल ध एवं कोमल नी। कछुआ वीणा पर उस समय चार तार होते थे जिन्हें मध्यम, खरज, लरज - पंचम तथा लरज - खरज में मिलाया जाता था। इसमें एक 'स' का तार और लगाया जाता था जिसे उल्टे हाथ की कनिष्टका से छेड़ा जाता था। कुछ संगीतकार एवं संगीतशास्त्री कहते हैं कि सज्जाद मोहम्मद एवं गुलाम मोहम्मद सुरबहार बजाते थे परन्तु सत्यता यह है कि वे सिर्फ कछुआ वीणा ही बजाते थे।'

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि अगर सज्जात मोहम्मद व गुलाम मोहम्मद ने कछुआ वीणा ही बजायी जिस पर कि इमरत खां के ही अनुसार चिकारी नहीं थी, तो गुलाम मोहम्मद काला बजाने के विशेषज्ञ कैसे बन गये ?[६५] इसके अतिरिक्त ऊपर लिखित वर्णनों के अनुसार सुरबहार का निर्माण सन् १८३० ई० के आसपास

लखनऊ व कानपुर के इलाकों में हो चुका था । इसलिए साहबदाद खां को (सन् १८५५ ई० में) सुरबहार का आविष्कारक नहीं माना जा सकता । इमरत खां का ही एक अन्य कथन कि, 'सारंगी से प्रेरित होकर सितार व सुरबहार में तरबें लगायीं गयीं' सत्य होना संदिग्ध प्रतीत होता है । सन् १८५५ ई० के फेटीस के सितार में दस तरबें थीं तथा सुरबहार पर पहले जैसे तबली काटकर बीच में तरबें लगायी जाती थीं [२१], इस बात की ओर संकेत देते हैं कि ये तरबें रबाब के संगीत से प्रेरित होकर ही लगायीं गईं । इमरत खां के कथन से सुरबहार के क्रमिक विकास के विषय में अवश्य पता चलता है जो कि तथ्यों के काफी समीप है । परन्तु इनका यह कहना कि सुरबहार का आविष्कार साहबदाद खां ने किया, लिखित प्रमाणों को देखते हुए माना नहीं जा सकता ।

सुरबहार का मुख्य प्रयोग ध्रुपद आलाप में बीन के अंगों को दर्शाने के लिए किया गया । बीन की तुलना में यह सितार के काफी समीप रहा क्योंकि इन दोनों की आकृति एवं तकनीक समान ही थी तथा यह वाद्य (सुरबहार) सितार वादकों ने ही मुख्यत: अपनाया । सुरबहार के परदों की आकृति व्लेठ वाले परदों जैसी थी। वे सितार के परदों से कम मुड़े हुए होते थे । इस तथ्य से इसे बीन के समान बनाने की प्रबल इच्छा का बोध होता है । यह वाद्य भी बीन से किसी प्रकार तुच्छ नहीं था । जैसाकि करामतउल्लाह खां ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि इस समय सुरबहार वादक तकनीकी तौर पर बीनकारों की तुलना में ज्यादा जानकार एवं धराने बाज हैं । [७०] परन्तु आधुनिक समय में सुरबहार की स्थिति पर प्रकाश डालें तो ज्ञात होता है कि यह वाद्य आज सितार की तुलना में काफी निम्न हो गया है क्योंकि क्रमश: सितार ने अपने क्षेत्र में इतना विकास कर लिया है कि वह बीन, ध्रुपद, सुरबहार आदि सभी की विशेषताओं को प्रस्तुत करने की सहज क्षमता रखता है । आजकल सुरबहार वादक बहुत ही कम मिलते हैं । उदाहरणत: इटावा धराने के इमरत खां एवं उनके एक पुत्र । इन वादकों के वादन में भी इतनी श्रेष्ठता नहीं रही, जितनी आजकल सितार वादकों में पाई जाती है ।

६. सितार मिलाने की विधियां - इस संदर्भ में सबसे प्राचीन उल्लेख (सन् १८३४ ई० का लेख) केप्टेन विलर्ड का ही है जिन्होंने तीन तारों वाले सितार का वर्णन किया है। उनके अनुसार पहला तार लोहे का, दूसरा व तीसरा पीतल का था। ये क्रमश: मंद्र सप्तक के मध्यम तथा षड्जों में मिलाए जाते थे।[२६] 'सरमाय: इशरत' के अनुसार दिल्ली में एक अन्य तीन तार वाला सितार भी प्रचलित था जिसमें पहला लोहे का, दूसरा पीतल का तथा तीसरा लोहे का तार था। यह क्रमश: मध्यम, षड्ज एवं पंचम में मिलाए जाते थे।[५२] इसके पश्चात् सितार मिलाने का उल्लेख फॅनी पक्र्स के लेख में मिलता है जो कि सन् १८५० ई० के आसपास का है।[२१] इसमें चार तार वाले सितार को मिलाने का तरीका बताया गया है -- पहला लोहे का, दूसरा व तीसरा पीतल का तथा चौथा सबसे छोटा तार लोहे का है। ये क्रमश: 'म स स प' में मिलाए जाते हैं। इसके बाद का उल्लेख एफ०जे० फेटीस का ही मिलता है।[२१] हालांकि इसमें सितार मिलाने की विधि नहीं दी गयी है परन्तु यह माना जा सकता है कि इसके पहले चार तार फॅनी पक्र्स की तरह ही मिलाए गए होंगे। फेटीस ने पांचवें तार को मंद्र सप्तक का बताया है। यह शायद पीतल का अतिमंद्र पंचम है जो उन्नीसवीं शताब्दी में अतिमंद्र पंचम की स्थिति पर मिलता है। एक अन्य उल्लेख के अनुसार दो और तार खूंटियों से बंधे हुए थे, जो कि डांड में बहुत नीचे की ओर थीं, जिन्हें मुख्य तार के स्वर में मिलाया जाता था।[२१] यह चिकारी के तारों का प्रथम उल्लेख प्रतीत होता है।

इसके बाद 'मादन-उल-मूसीक़ी' में मोहम्मद करम इमाम ने सितार में छह तारों का उल्लेख किया है जिनमें से एक चिकारी है। पहले लोहे के तार को बाज कहते हैं, यह प्रमुख तार है, दूसरे व तीसरे तार को खड़ज कहते हैं, यह पीतल के होते हैं, चौथा तार लोहे का पंचम है तथा पांचवां मोटा पीतल का है। छठा लोहे का

चिकारी का तार है इसे मध्यम में मिलाते हैं। यह दूसरे या तीसरे सप्तक के स्वरों में भी मिलाया जा सकता है, पर पहले सप्तक में नहीं।[५८]

'यंत्र क्षेत्र दीपिका'[५४] (सन् १८७० ई०) के अनुसार सितार में पांच मुख्य तार होते हैं। इसके अलावा इसमें चिकारी के तार भी हैं, जिनकी संख्या निश्चित नहीं है। पहले बाज के तार को नायकी कहा गया है। यह नाम बंगाल में काफी प्रचलित है। दूसरे तार को खड्ज (स) कहा गया है। तीसरा तार आजकल की तरह ही 'प़' में मिलाया जाता है। चौथा लोहे का तार 'प़' में मिलाना बताया गया है। पांचवां पीतल का मोटा तार है। इसे विशेषकर सभी बंगाल की पुस्तकों में 'स़' में मिलाना बताया गया है।

'सितार शिक्षा' (सन् १८६६ ई०) में भी सितार पर पांच मुख्य तार बतलाए गए हैं। इसके अनुसार पहला तार (नायकी) 'म' में, दूसरा तथा तीसरा खड्ज में, चौथा तार 'प़' में व पांचवां तार 'प़' में मिलाया जाता था। इस प्रकार का सितार मिलाना छोटे सितार के लिए बताया गया है।[५५]

'यंत्र क्षेत्र दीपिका' के अनुसार सितार में दो खड्ज के तार होते हैं जिन्हें जोड़ी कहा जाता है।[५४] इस नाम का यह पहला उल्लेख है तथा यह आजकल इसी नाम से जाना जाता है। पांचवां तार अतिमंद्र 'स़' में मिलाया जाता था तथा उसे खड्ज कहते थे। पीतल के पंचम को हटा दिया गया था।

'सितार शिक्षा' में बड़े सितारों पर चिकारी के तारों को मिलाने की विधि बतायी गयी है।[५५] पहली चिकारी मंद्र 'प' में तथा दूसरी चिकारी मध्य 'स' में मिलाई गई। इनके अलावा बाकी तारों के लिए मुख्य बात यह है कि ये सब पतली खूंटियों से बंधे होते थे तथा राग के मुख्य स्वरों में मिलाए जाते थे। 'पतली' का

उल्लेख कुछ-कुछ तरब के तारों के बारे में बतलाता हुआ प्रतीत होता है। 'यंत्र क्षेत्र दीपिका' में लेखक ने तीन-चार और चिकारी के तार बतलाए हैं। उनके अनुसार कुछ कलाकार इन्हें बड़े सितार पर लगाते हैं।[५४] परन्तु यह तरब के तार नहीं हैं। सरोद वादक करामतउल्लाह खां (सन् १९०८ ई०) ने अपनी पुस्तक में सितार को मिलाने की विधि लिखी है, जिसमें तरब के तारों को मिलाने का कुछ संकेत दिया गया है।[७१]

पटना के रामभजु लाल की पुस्तक 'गुलदस्ता-ए-मूसीक़ी' (सन् १८७३ ई०) में पांच तार वाले सितार को मिलाने की विधि बताई है। इसमें चिकारी का तार नहीं है जो कि पटना के पूर्वी बाज की विशेषता है।[४२]

दिल्ली की 'कानून सितार' (सन् १८७० ई०) में छह तार वाले सितार का वर्णन है। इसमें पहले तीन तारों को मिलाने का ढंग पुराना ही है। चौथा तार लोहे का पंचम का तार है तथा उसे खड़ज के तारों से नीचे स्वर में मिलाया जाता है।[५६]

पपीहा एक सहायक तार है जो 'स' में मिलाया जाता है। पपीहा नाम ग्यारहवीं शताब्दी में चिकारी के लिए प्रयोग किया गया। कभी-कभी दोनों शब्द नीची व ऊंची मिलायी गयी चिकारियों के लिए प्रयोग में आते हैं। 'कानून सितार' में वर्णित सितार लरज व पपीहा होने के कारण बड़े सितार की तरह ही था तथा पटना के छोटे सितार से भिन्न था। सन् १८७४ ई० की रहीम बेग की 'तहसील-ए-सितार' में तीन चिकारियों का वर्णन है जिन्हें 'स, प, सां' में मिलाया जाता था।[६०] पांचवां सबसे मोटा तार अतिमंद्र 'म' में तथा चौथा मंद्र 'प' या मंद्र 'म' में राग के अनुसार मिलाया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी की सादिक अली खां द्वारा लिखित 'सरमाय: इशरत' के अनुसार तीन तारों वाला सितार जो 'म, स, स' में मिलाया जाता था; उसके दो तारों में वृद्धि हुई और एक आहनी, एक विरंजी का प्रयोग शुरू हो गया। इसके बाद में एक चिकारी, ज़ेल तथा तरबों की तारें भी लगीं।[३८]

इन्हीं की दूसरी विधि के अनुसार जिसमें पहले तीन तार `म, स, प` में मिलाये जाते थे तथा बाद में चौथा तार आहनी `प` में, पांचवां विरंजी मंद्र का तार, जिसे लरज भी कहते हैं, भी लगाये गये। इसके बाद चिकारी, फिर ज़ेल (जो कि पपीहे की जगह सबसे ऊंची चिकारी के लिए प्रयोगकिया गया) तथा अन्त में तरब के तार लगे।[५२]

उन्नीसवीं शताब्दी के बाद के उल्लेख किसी नए सितार को मिलाने की विधि नहीं बतलाते। केवल चौथे, पांचवें या चिकारी के तारों में कुछ परिवर्तन किया गया। सितार को मिलाने की विधि में बीसवीं शताब्दी में तबदीली हुई। करामतउल्लाह खां ने अपनी पुस्तक में छह, सात तथा आठ तारों वाले सितार को मिलाने की विधि लिखी है।[७१] यह विधि ऊपर दी गयी विधियों से अलग है तथा बीसवीं शताब्दी के कुछ व्यावसायिक कलाकारों द्वारा प्रयोग में लाई गई। इनके अनुसार ६ तार वाले सितार के पांच तार म, स, स, म (या ग) और प में मिलाये जाते थे तथा एक चिकारी को `स` में मिलाया जाता था। सात तार वाले सितार को मिलाने की विधि कुछ अलग थी। यथा `म, स, प, ग, स` तथा चिकारी नी और स` में मिलायी जाती थी। लेखक के अनुसार इस तार की व्यवस्था से तरब की आवश्यकता समाप्त हो गई। आठ तार वाले सितार में चौथा तार बीन की तरह `रे` में मिलाया जाता था बाकी तार सात तार वाले सितार की तरह ही मिलाए जाते थे।

संगीत सुदर्शन में अमृतसेन द्वारा सितार मिलाने की विधि लिखी गयी है।[४४] पहला तार मंद्र मध्यम में तथा दूसरा एवं तीसरा तार पीतल के (जोड़े के तार) मंद्र सप्तक के `स` में, चौथा पीतल का तार मंद्र `प` में और पांचवां मंद्र `स` में मिलाया जाता था। बाकी दो तार लोहे के मध्य `स` तथा तार `स` में मिलाए जाते थे। `संगीत दर्पण` तथा `नादविनोद` में भी सितार मिलाने की यही विधि बताई गई हैं।

सुदर्शनाचार्य अपनी पुस्तक `संगीत सुदर्शन` में `संकेत विशेष` अध्याय में अमृतसेन द्वारा बतलाए गए निम्नलिखित परदों का उल्लेख करते हैं।[४४] मंद्र तीव्र म, मंद्र प, मंद्र

कोमल ध, शुद्ध मंद्र ध, कोमल मंद्र नी, मंद्र नी, मध्य स, शुद्ध रे, शुद्ध ग, शुद्ध म, तीव्र म, प,ध, नी, सां, तार रे, तार ग । तार ग का पहला परदा तथा मंद्र तीव्र मध्यम का सत्रहवां परदा है । अमृतसेन ने सितार में सत्रह परदों का प्रचार किया । अमृत सेन के तार मिलाने की विधि निम्नलिखित थी :--

मुख्य तार मध्यम में इसके बाद दो षड्ज और दो पंचम और कुछ सेनिया एक तार खड्ज में भी मिलाते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने अपने सितार के बीचों बीच एक तीसरा तूंबा लाया तथा कुछ और परदे भी लगा दिये । इस सितार में अचल ठाठ की तरह ही तेईस परदे थे । अन्य समकालीन सितार वादकों के सात तारों को मिलाने की विधि निम्न प्रकार थी :--

पहला	मंद्र म
दूसरा	मध्य स
तीसरा	मध्य स
चौथा	मध्य प
पांचवां	प खड्ज
छठा	मध्य स
सातवां	तार स

मुश्ताक अली खां जो एक श्रेष्ठ सितार वादक हैं, उनके सितार में तारों को मिलाने की विधि निम्न प्रकार है -- पहला मध्यम मंद्र सप्तक नं० २, स्टील का, दूसरा खड्ज पीतल का, तीसरा पंचम मंद्र सप्तक का पीतल या तांबे का नं० २८, चौथा मंद्र सप्तक का पंचम मोटा पीतल का तार, पांचवा मध्य सप्तक का पंचम स्टील का नं० १, छठा - मध्य सप्तक का स स्टील का नं० ०, सातवां तार सप्तक का स स्टील का नं० ०० ।

'नाद विनोद' जो 'संगीत सुदर्शन' से पहले लिखी गयी थी, उसमें चिकारी का उल्लेख है, हालांकि सेनियों ने इसको नहीं लगाया क्योंकि वे सिर्फ जोड़ ही बजाते थे, फाला नहीं बजाते थे। पन्नालाल गोस्वामी ने कई प्रकार के फालों का वर्णन किया (कई प्रकार की गतों के आधार पर) मणीलाल भी चिकारी का उल्लेख करते हैं। अमृतसेन के सितार में ६ तार थे और कोई चिकारी नहीं थी। मणीलाल के सितार में भी ६ तार थे लेकिन पन्नालाल के सितार में सात तार थे चिकारी को छोड़कर।

विलायत हुसैन खां के ~~सितार मिलाने की विधि के अन्तर्गत जैसाकि हमें ज्ञात है कि इनके~~ सितार में छह तार होते हैं जिसमें एक जोड़ी का अभाव होता है। इनसे पूछने पर बताया कि इसको लगाने से झनझनाहट बहुत होती है। इनकेतारों को मिलाने की विधि निम्न प्रकार है --

पहला तार	मध्यम मंद्र सप्तक स्टील नं० ३ या ४
दूसरा तार	मंद्र सप्तक का षड्ज (जोड़) पीतल या तांबे का नं० २६ या २७।
तीसरा तार	मध्य सप्तक का गंधार स्टील नं० ३
चौथा तार	मध्य सप्तक का पंचम स्टील नं० २ या ३
पांचवां तार	मध्य सप्तक का षड्ज स्टील नं० १
छठा तार	तार सप्तक का षड्ज स्टील नं० ०।

रविशंकर के विषय में जैसाकि कहा जाता है कि इन्होंने षड्ज व पंचम के तार सितार में लगाए, वह तो उचित नहीं लगता क्योंकि इन तारों की स्थिति का आभास हमें काफी समय पूर्व के ग्रंथों में तथा वाद्यों में मिलता है परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन तारों के प्रयोग का प्रचार इन्हीं ने किया क्योंकि इनसे काफी समय पूर्व से सितार मिलाने की विधि में इन तारों का प्रयोग नहीं हो रहा था। रविशंकर जी के सितार के तारों को मिलाने की विधि निम्न प्रकार है :--

पहला तार	मंद्र सप्तक के मध्यम में स्टील नं० ३
दूसरा तार	मंद्र सप्तक के षड्ज में पीतल नं० २६
तीसरा तार	अति मंद्र पंचम में पीतल या तांबे का नं० २८
चौथा तार	अति मंद्र सप्तक के षड्ज में पीतल नं० ३०
पांचवां तार	मंद्र सप्तक के पंचम में स्टील नं० २
छठा तार	मध्य सप्तक के षड्ज में स्टील नं० ०
सातवां तार	तार सप्तक के षड्ज में स्टील नं० ००

इस प्रकार के तारों की व्यवस्था से वादन में वैचित्र्य का समावेश हो जाता है। अति मंद्र सप्तक के षड्ज से प्रारंभ करके स रे ग म प ध नी स रे ग म प ध नी स रे ग म प ध नी स रे ग म तक बजाने से साढ़े तीन सप्तक का वादन किया जा सकता है। कुशल वादकों द्वारा तार मध्यम पर चार स्वरों की मीड़ का प्रयोग करके सितार पर पूरे चार सप्तक प्राप्त किये जा सकते हैं।

इसी प्रकार उस्ताद हलीम जाफर खां, निखिल बैनर्जी आदि भी अपने सितार में तारों को मिलाते हैं। केवल तारों का नम्बर स्वेच्छा से रखते हैं। यथा निखिल बैनर्जी के सितार में बाज का तार चार नं० का होता है।

अन्तत: सारांश में सितार की उत्पत्ति के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह मूलत: एक पर्शियन वाद्य है जो अफगानिस्तान में दोतार व तंबूर (तूंबे वाला) के रूप में विकसित हुआ तथा यहीं से यह दोनों वाद्य भारत में आए तथा यहां की संस्कृति में इस प्रकार समा गए कि इनके विकसित वाद्यों को देखने से भी यह प्रतीत नहीं होता है कि वह सब वाद्य पर्शियन सिता, सितें एवं सितार से ही विकसित हुए हैं। उदाहरणत: दोतारा जहां पर्शियन सितार, सारंगा, सारंदा इत्यादि नामों से विभिन्न प्रान्तों के लोक संगीत में प्रचलित हुआ, वहीं यह वाद्य रावणहत्था एवं साज-ए-कश्मीर नामक

वाद्य के रूप में अपने चरम विकास की सीमा पर पहुंच गया । यह सब वाद्य सिर्फ गायन की संगति के लिए प्रयोग में लाए जाते थे। वहीं तंबूरा जो कि प्रारम्भ में निबद्ध एवं अनिबद्ध नामों से प्रचलित था, वह धीरे-धीरे कर्नाटक सितार, गुजरात का देसी सितार एवं कश्मीर का सहतार के रूप में विकसित हुआ । अनिबद्ध तंबूरा, कश्मीरी सहतार एवं गुजरात का देसी सितार भी लोक संगीत में गायन की संगति के लिए प्रयोग में लाए गए । एकांकी वादन के लिए निबद्ध तंबूरे के चार तारों को (जैसा कि कई सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी की लघु चित्रकारियों में दर्शाया है) तीन तारों में बदलना ज़रूरी हो गया ताकि एक तार से दूसरे तार पर जाने के लिए पतली डांड वाले तंबूर पर ज्यादा कठिनाई न हो । इस प्रकार यह वाद्य सहतार के नाम से अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित हुआ तथा क्योंकि इस समय इसकी वादन शैली में इतना अधिक विकास हुआ कि यह वाद्य तंबूरे से पृथक अस्तित्व रखने लगा । यही कारण था कि कैप्टेन विलर्ड ने अपने लेख में इसे एक आधुनिक वाद्य माना, जिसकी बजह से बाद में काफी भ्रम उत्पन्न हो गया । सहतार में अठारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक इसकी वादन शैली में काफी विकास हुआ जिससे कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यह वाद्य बीन से भी श्रेष्ठ माना जाने लगा । उन्नीसवीं शताब्दी में बीन तथा सितार के मिश्रण से अनेक वाद्य प्रचलित हुए यथा बीन सितार, दो और तीन तूंबे वाले सितार । परन्तु यह गौण होने के कारण ज्यादा प्रचलित नहीं हो सके । इसी शताब्दी में सुरबहार का निर्माण किया गया, जो कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काफी प्रचलित रहा परन्तु सितार में और अधिक विकास होने के कारण सुरबहार की ख्याति घटती चली गयी ।

इस प्रकार आज एकांकी वादन के लिए तंबूर के विकसित वाद्यों में से सिर्फ छह या सात तारों वाला एवं तरबदार सितार ही प्रचलित है । बीसवीं शताब्दी के

कलाकारों की वजह से उसकी वादन शैली में इतनी उन्नति हो गयी है कि आज यह न सिर्फ भारत का वरन् पूरे विश्व का वाद्य बन गया है। सितार के क्रमिक विकास का संक्षिप्त विवरण चार्ट १ पर देखिए।

चार्ट-1

सितार का क्रमिक विकास

1.	मुस्लिम व पूर्वी देशो में भी	म व प मे भी
2.	गुजरात व राजिस्थान	गुज० व राजि०

ग्रंथ एवं ग्रंथकारों की सूची

१. अली-अल-इस्फहानी, किताब अल-अघानी, दसवीं शताब्दी; फिर्दवासी, ग्यारहवीं शताब्दी तथा निज़मी, बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में पर्शियन में इस वाद्य की चर्चा करते हैं ।

२. अरहामुद्दीन, नगमतुल-अजायब, १८३१, पृष्ठ ३० । (पर्शियन भाषा में स्वयं अनुवादित)

३. बी०सी० देव, भारतीय संस्कृति, द्वितीय भाग, १९८३, पृष्ठ १४३ ।

४. सी०आर० डे, दि म्यूज़िक एण्ड म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेन्ट आफ साउदर्न इंडिया एण्ड दि डेकन, १८९१, पृष्ठ १२० ।

५. सादिक अली खां, समुमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ २८२, (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित)

६. सारंगा वाद्य, गुजरात के बंजारों से साक्षात्कार, अहमदाबाद, १९८२ ।

७. माउन्ट आबू की घाटी में एक 'रावणहत्था' वादक से साक्षात्कार, १९८३ ।

८. डा० महेन्द्र भानावत, 'रंगायन', मासिक पत्रिका, नवम्बर १९८२, पृष्ठ १ ।

९. मोहनलाल रैना, म्यूज़िकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स आफ कश्मीर, हलीम अकादमी आफ सितार, दिसम्बर १९८२ ।

१०. विलियम ब्रिज वाटर, कोलम्बिया, वाइकिंग डेस्क एनसायक्लोपीडिया, १९७३, पृ०७२३ ।

११. म्यूज़िक गज़ेट आफ इन्डिया, अक्टूबर अंक, १९१० से १९११, फार्म नं० ४६७०८, कश्मीर लाइब्रेरी, श्रीनगर ।

१२. पी० साम्बामूर्ती, म्यूज़िक ईस्ट एण्ड वेस्ट, १९६६, पृष्ठ ३० एवं स्व० व्लाचमैन, एस०एम० टैगोर की हिन्दू म्यूज़िक पुस्तक में, पृष्ठ २१४-२१६ ।

१३. इब्राहीम आदिलशाह, 'किताब ए नौरस', सम्पादक नज़ीर अहमद, १९५६, परिचय(।।।)

१४. मीर अब्दुल वाहिद 'बिलग्रामी', हकायके हिन्दी, १५५६, पृष्ठ ३५ ।

१५. फकीरुल्लाह, रागदर्पण, रामपुर प्रति, पृष्ठ ६५ ।

१६. सवाई प्रतापसिंह देव, राधागोविंद संगीत सार, वाद्याध्याय, १६१२, पृष्ठ ७ ।

१७. पं० अहोबल, संगीत पारिजात, सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, वाद्याध्याय, पृष्ठ ४२-४७ ।

१८. सी०आर० डे, दि म्यूज़िक एण्ड म्यूज़िकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स आफ साउदर्न इन्डिया एण्ड डेक्कन, १८६१, पृष्ठ ११८, १२१ ।

१९. एच०ए० पोपले, म्यूज़िक आफ इन्डिया, १६२१, पृष्ठ १०५-१०७ ।

२०. सर डब्लू ओसले, अनेकडोट्स आफ इन्डियन म्यूज़िक, पृष्ठ १७० ।

२१. एलन जे माइनर, हिन्दुस्तानी इन्स्ट्रूमेन्टल म्यूज़िक इन दि अर्ली मोडर्न पीरियड, शोधकार्य, बनारस, १६८१ ।

२२. मोहनलाल रेमा के अनुसार भी सहतार कर्नाटक सितार से काफी मिलता हुआ वाद्य है ।

२३. गुजरात का देसी सितार, संगीत नाटक अकादमी, नेगेटिव नं० १३२६०, १४८३ ।

२४. विलियम इरविन, लेटर मुगल्स, भाग प्रथम, १७०७-१७२० ई० तक, १६२२, पृष्ठ १६३, इस पुस्तक में एक घटना का वर्णन किया गया है कि न्यामत खां से वज़ीर जुल्फिक्कार खां ने जब रिश्वत लेनी चाही तब यह तय हुआ कि न्यामत खां उसे एक हजार गिटार देगा। (लेखक तम्बूर को गिटार के नाम से पुकारता है) इस तंबूर में परदे लगे हैं, यह 'गुंचा-ए-राग' नामक पुस्तक जो लखनऊ से १८६३ में प्रकाशित हुई, उसके ११४ पृष्ठ के दूसरी तरफ चित्रित तंबूर को देखने से पता चलता है जिसका लेखक ने उल्लेखकिया है ।

२५. दरगाह कुली खां, मीरातें देहली, १७१८-१७३६, पृष्ठ ५५, पर्शियन भाषा में ।

२६. दरगाह कुली खां, पुरानी देहली की हालत, उर्दू अनुवाद, ख्वाजा हसन निज़मी, देहली, १६४६, पृष्ठ ६८-६६ ।

२७. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १९२५, पृष्ठ ५७ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

२८. दरगाह कुली खां, मीराते देहली, १७१८-१७३९, पृष्ठ ५६ (पर्शियन भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

२९. एन० आगस्टस विलर्ड, म्यूज़िक आफ हिन्दुस्तान, १८३४, पृष्ठ ६५ ।

३०. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, १९७६, पृष्ठ ३४६; रमावल्लभ मिश्र, संगीत पत्रिका, जून १९७८, पृष्ठ ४४ ।

३१. इस अध्याय के भाग 'ख' में सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक की अनेक लघु-चित्रकारियों का वर्णन किया गया है । बाग वाला संग्रहालय, जयपुर ।

३२. सैयद सफदर हुसैन खां देहलवी, कानून सितार, १८७०, पृष्ठ १७ ।

३३. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ २२२-२२६ । इस पुस्तक में बहादुर खां की गतें दी हैं उसमें मींड़, गमक एवं ज़मज़मा का काफी प्रयोग बताया है (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

३४. राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, १९८४ ।

३५. सी०आर० डे, दि म्यूज़िक एण्ड म्यूज़िकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स आफ साउदर्न इन्डिया एण्ड दि डेक्कन, १८९१, पृष्ठ १२२ ।

३६. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ १९० (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित)

३७. केलकर संग्रहालय, पूना, १९८२ ।

३८. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ १८२-१८३ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

३९. एस०एम० टैगोर, यंत्र क्षेत्र दीपिका, १८७३, पृष्ठ ४ ।

४०. रहीम बेग , तहसील-ए-सितार, कानपुर, १८७४, पृष्ठ ७ ।

४१. सैयद सफदर हुसैन खां, कानून सितार, १८७०, पृष्ठ ३-५ ।

४२. रामभजु लाल, गुलदस्ता-ए-मूसीक़ी, १८७३, पृष्ठ २० ।

४३. राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, १९८४ ।

४४. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १९१६, अध्याय संकेत विशेष ।

४५. अब्दुल हलीम जाफर खां, साक्षात्कार, बम्बई, १९८२ ।

४६. एन० आगस्टस विलर्ड, दि ट्रीटाइज़ आन दि म्यूज़िक आफ इन्डिया, एस०एम० टैगोर की हिन्दू म्यूज़िक पुस्तक में, १९६५, पृष्ठ १८ ।

४७. एच०जी० फारमर, स्टडीज़ इन ओरियन्टल म्यूज़िकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स, १९३९, पृष्ठ ८९

४८. श्रीनिवास शास्त्री, रागतत्व विबोध, सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, पृष्ठ ८ ।

४९. सवाई प्रतापसिंह देव, संगीतसार, १९१२, चतुर्थ भाग, प्रकीर्णाध्याय, पृ० १४ ।

५०. एन० आगस्टस विलर्ड, दि ट्रीटाइज़ आन दि म्यूज़िक आफ इन्डिया, एस०एम० टैगोर की हिन्दू म्यूज़िक पुस्तक में, १९६५, पृष्ठ १०० ।

५१. शाह आलम, नादिराति शाही, रामपुर राजा लायब्रेरी द्वारा प्राप्त प्रति, पृष्ठ ८८ ।

५२. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ १७ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

५३. राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता, १९८४ ।

५४. एस०एम० टैगोर, यंत्र क्षोत्र दीपिका, १८७०, पृष्ठ ५-६ ।

५५. कृष्णधन बन्दोपाध्याय, सितार शिक्षा, १८६६, पृष्ठ २१-२२ ।

५६. रविशंकर के शिष्यों का मत है कि यह तार रविशंकर ने ही लाया है ।

५७. उस्मान खां, साक्षात्कार, पूना, जनवरी १९८३ एवं अब्दुल हलीम जाफर खां, साक्षात्कार, बम्बई, जुलाई १९८४ ।

५८. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १९२५, पृष्ठ २२७ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

५९. सैयद सफदर हुसैन खां, कानून सितार, १८७०, पृष्ठ ४-६ ।

६०. रहीम बेग, तहसील-ए-सितार, १८७४, पृष्ठ ७-१० ।

६१. रहीम बेग, नग्मा-ए-सितार, १८९४, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४३ ।

६२. विमलकान्त राय चौधरी, भारतीय संगीत कोष, १९७५, पृष्ठ १३६-१३८ ।

६३. वही, पृष्ठ १६-१८ ।

६४. सादिक अली खां, सुरुमाय: इशरत, १८९५, पृष्ठ २०३ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

६५. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १९२५, पृष्ठ ४५ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित) ।

६६. इमरत खां, साक्षात्कार, कलकत्ता, फरवरी १९८४, एवं दिल्ली अक्टूबर, १९८३ ।

६७. फकीरुल्लाह, रागदर्पण, रामपुर राजा लाइब्रेरी से प्राप्त प्रति ।

६८. फ्रांसिस, एस०एम० टैगौर की हिन्दू म्यूज़िक में, पृष्ठ २०५ ।

६९. मनमोहन ठाकुर, इटावा घराना इट्स रोल एण्ड अचीवमेन्ट्स, सज्जन मिलाप, घरानों पर सम्मेलन हुआ, बोम्बे में ।

७०. करामत उल्ला खां, इसरारे-करामत उर्फ नग्माते नियामत, १९०८, पृष्ठ १६८ ।

७१. वही, पृष्ठ १७३; १७७-१८३ ।